नादार्चन

1994

'नादार्चन' के उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ :—

पंजीकृत संख्या—**194/1979** फोन : **361254**

दि वाराणसी उपनिवेशन सहकारी आवास समिति लि०

डी 59/72-1 महमूरगंज, वाराणसी

उपहार-प्रति

NADARCHAN MUSIC-ANNUAL 1994

Editor : Dr. Adinath Upadhyaya

नादार्चन संगीत-वार्षिकी

सम्पादक : डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

संस्थापना : 1991
प्रेरणा : पं० दिवाकर पाठक
परामर्श मण्डल : उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ
डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा
डॉ० (श्रीमती) एन० राजम्
डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर
डॉ० सुभद्रा चौधरी
संपादन-सहयोग : प्रमोद कुमार पाठक
लेखा-नियंत्रण : राम जन्म उपाध्याय
संयोजन : शिवेन्द्र प्रताप सिंह
मंचीय-व्यवस्था : कमला सिंह
मंच-नियंत्रण : करुणाकर ठाकुर
समीर कुमार मजूमदार
जगदीश चन्द्र उत्तम
प्रदीप रंजन दत्ता
प्रसार व विज्ञापन : चेतन उपाध्याय
व्यवस्था : डॉ० विमला मुसलगाँवकर
पता : 374/ए, डी० एल० डब्ल्यू०,
वाराणसी (उ० प्र०)-221004

Establishment : 1991
Inspiration : Pt. Diwakar Pathak
Advisory Committee : Ustad Bismillah Khan
Dr. (Km.) Premlata Sharma
Dr. (Smt.) N. Rajam
Dr. Gajanan Shastri Musalgaonkar
Dr. Subhadra Chaudhari
Editorial Assistance : Pramod Kumar Pathak
Account Control : Ram Janma Upadhyaya
Co-ordination : Shivendra Pratap Singh
Stage Arrangement : Kamala Singh
Stage Control : Karunakar Thakur
Samir Kumar Mazumdar
Jagdish Chandra Uttam
Pradeep Ranjan Dutta
Circulation & Advertisement : Chetan Upadhyaya
Management : Dr. Vimala Musalgaonkar
Address : 374/A. D. L. W.,
VARANASI (U. P.)-221004

पद्मपत्रप्रभः षड्ज, ऋषभः शुकवर्णकः । कनकाभस्तु गान्धारो, मध्यमः कुन्दसन्निभः ॥
पञ्चमस्तु भवेत् कृष्णः, पीतवर्णस्तु धैवतः । निषाद सर्ववर्णोऽयं विज्ञेयः स्वरवर्णकः ॥
—बृहद्देशी;— 'आवरण पृष्ठ पर अंकित सङ्गीत के सात स्वर'

पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ लेखकों के अपने विचार हैं, सम्पादक किसी विवाद के लिए उत्तरदायी नहीं है। कृपया सम्पादक की अनुमति के बिना पत्रिका का कोई भी अंश अन्यत्र प्रकाशित न किया जाय।

--The Articles published in the magazine are the views of the writer of their own, Editor Is not responsible for any controversy.

--No portion of the magazine should be published anywhere else without the permission of the Editor.

मूल्य : रु० 35.00 भारत में
$ 10.00 विदेशों में

❀ शिव काली मन्दिर ❀

PRICE : Rs. 35 00 Inland
$ 10.00 Overseas

विषय–सूची

1. देवि-वन्दना	शिवसेवक त्रिपाठी	1
2. बृहद्देशी ग्रन्थ के रचयिता मतङ्गमुनि : एक तथ्यपरक अवलोकन	डॉ० अनिल बिहारी ब्योहार	2–7
Matangamuni, The Writer of Brihaddeshi : A Factual Introduction of The Author.	(Dr. Anil Bihari Beohar) Editor's Summary	8
3. भारतीय संगीतशास्त्र में एकाधिक अनुशासनों का योग	प्रो० प्रेमलता शर्मा	9–12
Association of Various Disciplines With Indian Musicology.	(Prof. Premlata Sharma) Editor's Summary.	13–14
4. तबला के महान जादूगर पण्डित शाम्ता प्रसाद मिश्र- 'गुदई महाराज'	जयप्रकाश सिंह 'सुरमणि'	15–28
A Great Magician of Tabla Pt. Shamta Prasad Mishra 'Gudai Maharaja'	(Jaiprakash Singh 'Surmani') Editor's Summary.	29–32
5. भारतीय सङ्गीत में नवीन प्रयोग	प्रो० इन्द्राणी चक्रवर्ती	33–37
New Experiments in Indian Music	(Prof Indrani Chakravorty) Editor's Summary.	38
6. ताल-ध्यान और ताल-चित्र : एक प्रयोग, एक परम्परा	डॉ० गुलशन सक्सेना	39–42
Taal-Dhyana And Taal-Chitra : Eka Prayoga, Eka Parampara	(Dr. Gulshan Saxena) Editor's Summary.	43
7. ब्राह्मी सङ्गीत	प्रो० रवीन्द्र नाथ ओझा	44–47
Brahmi Sangeet	(Prof Ravindra Nath Ojha) Editor's Summary.	48
8. Ideal Audience and Critic	(Dr. Ritwik Sanyal)	49–51
आदर्श प्रेक्षक एवं समालोचक	डॉ० ऋत्विक सान्याल सम्पादककृत सार-संक्षेप	52
9. खयाल गायन के प्रमुख घरानों की प्रतिनिधि रचनाएँ	डॉ० रामचन्द्र व्ही कविमण्डन	53 63
The Representative Compositions of the Main khayal Gharanas	(Dr. Ramchandra V. Kavimandan) Editor's Summary.	64
10. हमारे लेखक-रचनाकार (Our Contributors)		
11. श्रद्धाञ्जलि, स्व० गुदई महाराज		
12. 'नादार्चन' के पिछले अंकों की विषयवस्तु		
13. हमारे सांस्कृतिक क्रिया-कलाप		
14. 'नादार्चन'—विद्वानों एवं कला-मर्मज्ञों की दृष्टि में		

●

'बृहद्देशी' के प्रणेता

प्रातः स्मरणीय परम विभूति

मतङ्‌ग मुनि

को सश्रद्ध समर्पित

आमुख

नादार्चन-प्रवेशाङ्क के सम्पादकीय-प्राक्कथन में मैंने निवेदन किया था कि यह पत्रिका संगीत के प्रयोक्ताओं, श्रोताओं, शिक्षकों, शिक्षार्थियों, शोधार्थियों, समालोचकों, आयोजकों आदि सभी के लिए उपकारक सिद्ध होगी। इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर रहते हुए नादार्चन का अंक अपने शैशव के चतुर्थ वर्ष में प्रवेश कर रहा है। पाठकों की सुविधा के लिए इस अंक से पत्रिका का स्वरूप द्विभाषीय कर दिया गया है। अर्थात् हिन्दी लेखों का सार-संक्षेप अंग्रेजी में एवं अंग्रेजी लेखों का सार-संक्षेप हिन्दी में प्रस्तुत है।

'नादार्चन 1994-प्रकाशन' के इस पुनीत अवसर पर मैं परम पिता परमेश्वर का बारंबार नमन करता हूँ। इस अवसर पर मैं सर्वप्रथम सहभागी लेखकों, रचनाकारों को हार्दिक साधुवाद देता हूँ, जिनके स्नेह-सौजन्य से ही ज्ञान यज्ञ का यह गुरुतर सकल्प मूर्तत्त्व को प्राप्त कर सका है।

पूज्य बंगाली बाबा एवं समस्त गुरुजनों को प्रणाम करता हूँ जिनका आशीर्वाद ही मेरा संबल है। भ्रातृतुल्य श्री दिवाकर पाठक को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा से ही नादार्चन के सम्पादन में प्रवृत्त हुआ। समय-समय पर विचार विमर्श में सहभागिता के लिए नादार्चन परामर्श-मण्डल के माननीय विद्वज्जन एवं प्रो० रवीन्द्र नाथ ओझा को सादर साधुवाद अर्पित करता हूँ। पत्रिका के मुद्रण में नैतिक अवलंब प्रदान करने के लिए श्री कमलापति मिश्र (हरिओम् जी), श्री झारखण्डे राय, श्री बनारसी पाण्डेय, श्री चन्द्रमणि ठाकुर, श्री ध्रुव कुमार मालवीय, श्री कृष्ण अवतार, श्री रमेश कुमार सिंह—आप सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। पत्रिका के प्रकाशन एवं मुद्रण के विविध चरणों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से जुड़े डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार तथा श्रीमती सत्या उपाध्याय 'शास्त्री' का सप्रेम स्मरण करता हूँ। 'स्व० गुदई महराज' के व्यक्तित्व-कृतित्व को लेकर हमारी योजना को साकार रूप देने में श्री जयप्रकाश सिंह 'सुरमणि' तथा उनके सहयोगियों ने जो श्रमसाध्य प्रयत्न किया, इसके लिए वे मेरी बधाई के पात्र हैं। सम्पर्क सूत्र व प्रूफ-रीडिंग जैसे विविध कार्यों में अर्पित सेवाओं के लिए चि० राजेश उपाध्याय, चि० विजय प्रकाश सिंह, चि० सुनील कुमार मालवीय एवं चि० विनय प्रकाश तिवारी को आशीर्वाद देता हूँ।

पत्रिका के मुद्रक श्री कमलनाथ मौर्य तथा उनके कर्मियों को प्राण-पण से उनके सहयोग के लिए अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ।

इस अवसर पर मैं आदरणीया डॉ० विमला मुसलगाँवकर तथा चि० चेतन उपाध्याय का विशेष रूप से स्मरण करना चाहता हूँ जिनके अथक परिश्रम व दायित्व-निर्वाह के फलस्वरूप ही 'नादार्चन—1994' का यह अंक आपकी सेवा में प्रस्तुत कर सका।

शरद् पूर्णिमा, 18 अक्टूबर 1994,
डी० एल० डब्ल्यू०, वाराणसी।

—आदिनाथ उपाध्याय

हमारे प्रेरणा-स्रोत

ब्रह्मलीन पूज्य श्री बंगाली बाबा

डीरेका परिवार के संरक्षक

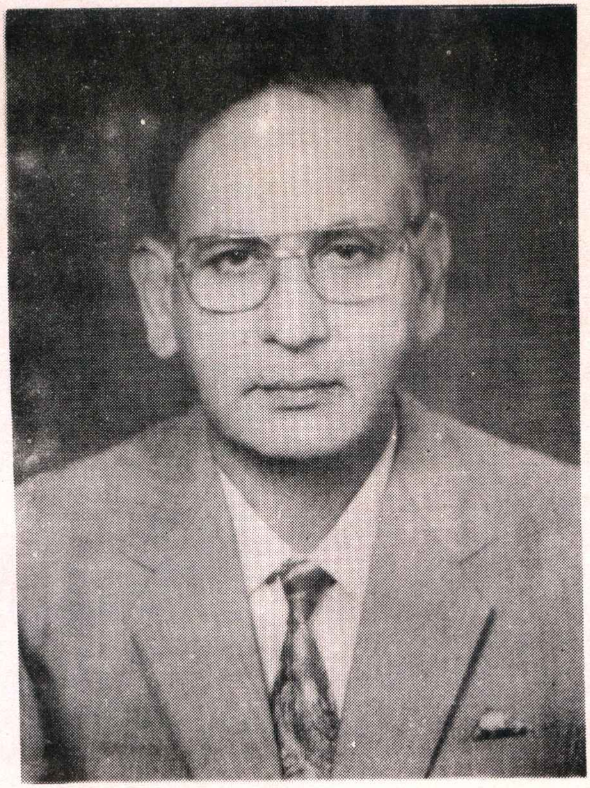

हमारे महाप्रबन्धक श्री राजेन्द्र कुमार जैन

देवि-वन्दना

—शिवसेवक त्रिपाठी

माँ ! दिव्य भूषण-धारिणी,
माँ ! नित्य मंगल-कारिणी,
श्रीचरण में ले नमन् !
देवि, वन्दे ! देवि, वन्दे !! देवि !!!

शुचि ह्रीं, विद्ये, सुमेधे,
स्वयं श्री, सम्पन्ने, सुधे,
श्री-पदों में नत नमन् !
देवि, वन्दे ! देवि, वन्दे !! देवि !!!

क्लीं संज्ञा-शक्तिमय तू,
शुभे, मंगल-भक्तिमय तू,
शाश्वते माँ ! नित नमन् !
देवि, वन्दे ! देवि, वन्दे !! देवि !!!

भैरवी, भारती तू,
अर्चना, आरती तू,
कंज-पद-कोमल-कलित,
देवि, वन्दे ! देवि, वन्दे !! देवि !!!

शौर्य्यशक्तिनी, रूप दुर्गे !
ओजस्विनी, अनुरूप भर्गे !
अम्बुजे-माँ ! नितनमन् ।
अम्बुजे-माँ ! नतनमन् !
देवि, वन्दे ! देवि वन्दे !! देवि !!!

●

बृहद्देशी ग्रन्थ के रचयिता मतङ्गमुनि : एक तथ्य परक अवलोकन

— अनिल बिहारी ब्योहार

संगीतशास्त्र पर लिखने वाले प्राचीन आचार्यों में 'बृहद्देशी' के रचयिता मतङ्गमुनि का नाम बहुशः स्मृत और बहुश्रुत है। ''बृहद्देशी'' के रूप में उनके कृतित्व से संगीत जगत भली-भाँति परिचित है। अभिनवगुप्त, नान्यदेव, शार्ङ्गदेव, कल्लिनाथ, सिंहभूपाल, पार्श्वदेव आदि सभी प्रमुख परवर्ती शास्त्रकारों ने मतङ्ग का स्मरण आदरपूर्वक किया है। परवर्ती आचार्यों द्वारा मतङ्गमुनि का स्मरण जितने अधिक प्रसंगों में किया गया है, सम्भवतः उतना किसी अन्य पूर्वाचार्य का नहीं किया गया। इसी बात से प्राचीन संगीतशास्त्र के सम्बन्ध में मतङ्गमुनि के मत अथवा उनके ग्रन्थ 'बृहद्देशी' की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। चूंकि प्रस्तुत लेख का केन्द्रीय विषय 'बृहद्देशी' न होकर स्वयं ''मतङ्ग'' हैं, अतः विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त जानकारी के आधार पर हम यहाँ सामान्य रूप से उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

प्राचीन साहित्य में मतङ्ग का नाम महर्षि, राजर्षि अथवा मुनि के रूप में विविध प्रसंगों में प्राप्त होता है।[1] यहाँ प्रश्न यह उठता है कि, मतङ्ग नाम का सम्बन्ध किसी एक ही व्यक्ति से रहा है, अथवा विभिन्न देश-काल में हुए एकाधिक व्यक्तियों से, क्योंकि, रामायण में प्राप्त उल्लेख के आधार पर मतङ्ग को रामायण का पूर्ववर्ती कहा जा सकता है, परन्तु 'बृहद्देशी' के रचयिता के रूप में मतङ्ग का काल, भरत और दत्तिल के बाद का सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में वास्तविकता तक पहुँचने के लिये विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त मतङ्ग विषयक उल्लेखों की चर्चा करना यहाँ प्रासंगिक होगा।

मतङ्गमुनि का नाम सर्वप्रथम, वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है। रामायण के उल्लेख के अनुसार क्रौञ्चारण्य के पास 'मतङ्गवन' में मतङ्गमुनि का आश्रम था।[2] कर्नाटक में हम्पी के निकट मतङ्ग पर्वत नामक एक स्थान आज भी विख्यात है।[3] ये मतंग शबरी के गुरू थे।[4] शबरी की गुफा भी इसी स्थल पर प्राप्त होती है।[5] जब बालि ने मयसुत दुंदुभि का वध किया, तो उसके रक्त बिन्दु मतङ्गाश्रम में जा गिरे। इस पर क्रोधित होकर मतङ्ग ने बालि को इस क्षेत्र में प्रवेश करते ही मृत्यु हो जाने का शाप दिया। इसी कारण बालि से निर्भय होकर सुग्रीव ने इसे अपना निवास-स्थल बनाया।[6]

महाभारत, अनुशासनपर्व 27/29, में प्राप्त उल्लेख के अनुसार मतङ्ग का जन्म चाण्डाल योनि में हुआ था। अनुशासन पर्व प्राप्त कथा के अनुसार मतङ्ग का जन्म एक व्यभिचारिणी ब्राह्मणी माँ और नाई पिता से हुआ था। अपने जन्म के इस कलंक को मिटाने के लिये उन्होंने आजीवन तपस्या की, किन्तु वे इससे मुक्त न हो सके। वंशानुक्रम से प्राप्त कलंक की अपरिहार्यता को प्रमाणित करने के लिये इसकी कथा का भी वहाँ उल्लेख प्राप्त होता है। अपने ब्राह्मण पिता की आज्ञानुसार एक बार यह

यज्ञ के लिये समिधा एवं दर्भ लाने के लिये गाड़ी में गर्दभी और उसके बच्चे को जोतकर वन की ओर जा रहा था। माँ की बराबरी से न चल पाने के कारण इसने गर्दभी के बच्चे के मुख पर चाबुक से अनेक आघात किये। पीड़ित बच्चे को सान्त्वना देने केलिये गर्दभी ने अपने बच्चे से कहा कि यह अपनी चाण्डाल यौनि के अनुसार क्रूर व्यवहार कर रहा है, जिसे तुझे सहना ही पड़ेगा। गर्दभी की यह बात सुनकर इसने पूछा कि मेरे माता-पिता तो ब्राह्मण हैं, तब मैं चाण्डाल कैसे हुआ ? तब गर्दभी ने उसे बतलाया कि, उसे जन्म देने वाला पिता एक नाई ही था, ब्राह्मण नहीं। इस कारण तुममें ब्राह्मणत्व कहाँ हो सकता है ? गर्दभी की यह बात सुनकर यह ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिये तपस्या करने चला गया। प्रसन्न होने पर भी इन्द्र ने चाण्डाल होने के कारण इसके लिये ब्राह्मणत्व की उपलब्धि असम्भव बतलाई। पुनः इसने एक पैर पर खड़े होकर सौ वर्ष तक तपस्या की, पर प्रसन्न होने पर इन्द्र ने फिर वही उत्तर दिया। तब इसने 'गया' में अंगूठे के बल खड़े होकर अस्थि-पंजर शेष रहने तक कड़ी तपस्या की। इन्द्र ने कहा कि, ब्राह्मणत्व छोड़कर कुछ भी माँग सकते हो। तब इसने इन्द्र से ये वरदान माँगे। मनचाही जगहों पर विहार करना। इच्छित रूप धारण कर सकना। आकाशगामी होना। ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के लिये पूज्य होना। अक्षयकीर्ति की प्राप्ति। इन्द्र ने इसे यह वर भी दिया कि स्त्रियाँ ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये तुम्हारी पूजा करेंगी और तुम छन्दोदेव के नाम से उन्हें पूज्य होगे।

महाभारत, आदिपर्व में एक कथा प्राप्त होती है, जिसके अनुसार मतङ्ग एक धर्मात्मा राजर्षि थे, जो शाप के कारण, व्याध बन गये थे, तथा इन्होंने दुर्भिक्ष काल में विश्वामित्र की पत्नी का भरण-पोषण किया था, परिणामस्वरूप बाद में विश्वामित्र ने मतंग द्वारा आयोजित यज्ञ में पौरोहित्य स्वीकार किया था।[7]

प्राचीन चरित्रकोश (पृ० 253) के आधार पर देवीभागवत एवं हरिवंशपुराण में जो कथा प्राप्त होती है, उसके अनुसार दुर्भिक्ष काल में विश्वामित्र के परिवार का भरण-पोषण 'त्रिशंकु' ने किया था। वास्तव में इक्ष्वाकु वंश के राजा 'त्रैयारूण' का ज्येष्ठ पुत्र सत्यव्रत ही वशिष्ठ के शाप के कारण 'त्रिशंकु' अवस्था को प्राप्त हुआ था, तथा वशिष्ठ के पुत्रों के शाप के कारण इसी सत्यव्रत ने चाण्डाल अवस्था भी प्राप्त की थी। चाण्डाल अवस्था में ही सत्यव्रत / त्रिशंकु ने विश्वामित्र के परिवार का भरण-पोषण किया था।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि, विश्वामित्र के परिवार का भरण-पोषण करने वाले धर्मात्मा-राजर्षि मतङ्ग और सत्यव्रत / त्रिशंकु क्या एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न नाम हैं ? वास्तव में मूल-ग्रन्थों में ऐसा कोई संकेत प्राप्त नहीं होता, समानता केवल इस बात की है कि, त्रिशंकु एवं व्याध मतंग दोनों ने ही दुर्भिक्ष काल में विश्वामित्र के परिवार का भरण-पोषण किया था, जिससे प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने इनके यज्ञ का पौरोहित्य स्वीकार किया था। इस आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जाती है कि, मतङ्ग, सत्यव्रत और त्रिशंकु नामों का सम्बन्ध एक ही व्यक्ति से रहा है। वेट्टम् मुनि ने भी सम्भवतः इसी आधार पर मतङ्ग का नामान्तर 'त्रिशंकु' बतलाया है। (पौराणिक एनसाइक्लोपीडिया / पृ० 493, 794)

अभिनवगुप्त, संगीतशास्त्र के साथ-साथ तन्त्र-शास्त्र के प्रसंग में भी मतङ्ग का उल्लेख करते हैं, उन्होंने तंत्रालोक में "देवीयामल" तंत्र के आधार पर तन्त्रशास्त्र के जिन दस गुरुओं के नाम गिनाये हैं, उनमें मतङ्ग का नाम भी सम्मिलित है।[8] इससे यह स्पष्ट होता है कि, बृहद्देशी के रचयिता मतङ्ग

तन्त्रशास्त्र के आचार्य भी थे। बृहद्देशी में भी तन्त्रशास्त्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। अभिनवगुप्त द्वारा तन्त्रशास्त्र एवं बृहद्देशी के रचयिता के रूप में जिन मतङ्ग को उद्धृत किया गया है, उनका सम्बन्ध रामायण में प्राप्त शबरी के गुरू मतंग एवं महाभारत (अनुशासन पर्व) में उल्लिखित चाण्डाल मतङ्ग से ही जान पड़ता है। विश्वामित्र के परिवार का भरण-पोषण करने वाले मतङ्ग, सम्भव है कोई भिन्न व्यक्ति रहे हों।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि, बृहद्देशी के रचयिता मतंग एवं शबरी के गुरु मतङ्ग को एक ही व्यक्ति कैसे माना जा सकता है, जबकि बृहद्देशी का रचनाकाल लगभग सातवीं शदाब्दी माना जाता है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि, ऋषि-मुनि अथवा पौराणिक चरित्रों का अभिज्ञान किसी देश और काल की सीमा में रहकर नहीं किया जा सकता। यह सम्भव है कि, मतङ्ग नाम के कोई मूल व्यक्ति रहे हों, जिनकी चर्चा रामायण, महाभारत (अनुशासन पर्व) में की गई है। बाद में इन्हीं के शिष्य-प्रशिष्य अथवा सन्तान भी "मतंग" के ही नाम से प्रख्यात हुए। एक सम्भावना यह भी है कि, रामायणोक्त मतंग की ही शिष्य-परम्परा में किसी व्यक्ति ने भरतोत्तर काल में "बृहदेद्शी" की रचना की हो तथा उस ग्रन्थ में स्वयं का नाम देने के बजाय अपनी परम्परा के आदि-गुरु का नाम दे दिया हो।

बृहद्देशी के अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र पर मतङ्ग द्वारा रचित 'मतङ्गपारमेश्वरागम्' नामक एक ग्रन्थ भी आज हमें प्राप्त होता है, जो महातन्त्र शैली का ग्रन्थ है। पं० गोपीनाथ कविराज के अनुसार 'मतङ्गाश्रम' एवं 'मतङ्गसूत्र' नामक दो तन्त्र ग्रन्थों का उल्लेख भी हमें प्राप्त होता है, परन्तु ये ग्रन्थ प्रत्यक्ष रूप से देखने को नहीं मिल सके हैं।[9] अभिनवगुप्त, मतङ्ग को वंश (वाद्य) का आविष्कर्ता मानते हैं,[10] तथा 'मतङ्ग पारमेश्वरागम्' में भी यह उल्लेख प्राप्त होता है कि, शिव को प्रसन्न करने के लिये मतङ्ग ने वंश का आविष्कार किया।[11] इस आधार पर यही सिद्ध होता है कि 'वंश' के आविष्कर्ता, तांत्रिक आचार्य मतङ्ग ही 'बृहद्देशी' के भी रचयिता थे, परन्तु 'मतङ्गपारमेश्वरागम्' एवं उपलब्ध बृहद्देशी की भाषा-शैली को देखकर यह प्रतीत होता है कि, दोनों ग्रन्थ किन्हीं दो व्यक्तियों की रचनाएँ हैं। सम्भव है, मतंग के सम्प्रदाय के दो भिन्न व्यक्तियों ने बृहद्देशी एवं 'मतङ्गपारमेश्वरागम्' का ग्रन्थन किया हो।

रामायण और महाभारत के अतिरिक्त कादम्बरी, रघुवंश, कुट्टनीमतकाव्यम्, सद्दुक्तिकरणामृत, सूक्तिमुक्तावलि, शार्ङ्गधरपद्धति जैसे साहित्य ग्रन्थों में भी विभिन्न प्रसंगों में मतङ्गमुनि का उल्लेख प्राप्त होता है। संगीतग्रन्थों में प्राप्त उल्लेखों से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि, मतङ्गमुनि गीत वाद्य एवं नृत्य के क्षेत्र में एक प्रामाणिक पूर्वाचार्य थे, परन्तु संगीत के ग्रन्थों में इनकी पूर्वपरता के बारे में विविध प्रकार के एवं कभी-कभी परस्पर विरोधी उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।

सिंहभूपाल के 'रसार्णव सुधाकर' में प्राप्त उल्लेख के अनुसार मतङ्ग, भरत के पुत्रों में से एक थे,[12] परन्तु स्वयं भरत ने नाट्य-शास्त्र में अपने पुत्रों के जो नाम गिनाये हैं, उनमें मतङ्ग का नाम प्राप्त नहीं होता।[13] दूसरी ओर अजयमित्र शास्त्री के उल्लेखानुसार "कोहलरहस्यम्" में मतङ्ग का नाम कोहल के शिष्य के रूप में प्राप्त होता है। (इंडिया ऐज़ सीन इन दि कुट्टनीमत ऑफ दामोदर गुप्त पृ० 186) उपलब्ध बृहद्देशी में भी मतंग द्वारा एकाधिक प्रसंगों में कोहल के मत को उद्धृत किया गया है, परन्तु कृष्णम्माचारियर के अनुसार श्री मुसनम के "स्थल पुराण" में कोहल को मतङ्ग

का पुत्र कहा गया है।[14] इसी तथ्य की पुष्टि करने वाला एक अंश कल्लिनाथ की टीका में भी प्राप्त होता है, जहाँ कोहल और शार्दूल का संवाद उद्धृत किया गया है। (संगीत रत्नाकर / 4 / पृ० 111–124). इस संवाद के अन्तर्गत कोहल ने मतङ्ग के मत से 'विशृङ्गाटकबन्धन' का लक्षण दिया है।[15]

उक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि, मतङ्ग के बारे में विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। ऐसी स्थिति में परस्पर विरोधी विचार धाराओं के बीच सामन्जस्य स्थापित करना अत्यधिक दुरूह कार्य है। फिर भी सामान्य रूप से सम्भावना यह व्यक्त की जा सकती है कि, रामायण और महाभारत में प्राप्त उल्लेख के अनुसार मतंग नाम के जो मुनि अथवा ऋषि हुए हैं, उनकी ही शिष्य-परम्परा में बाद में किसी व्यक्ति ने मतंग के नाम पर "बृहद्देशी" और "मतंगपारमेश्वरागम्" जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों का ग्रन्थन किया होगा। इतना ही नहीं उक्त व्यक्ति ने "बृहद्देशी" में ऐसे पूर्वाचार्यों को भी उद्धृत किया है, जो कि वास्तव में रामायणोक्त मतंग के बाद हुए। ऐसी स्थिति में 'बृहद्देशी" अथवा "मतंग पारमेश्वरागम्" में प्राप्त मूल सिद्धान्तों को तो मतङ्ग सम्मत माना जा सकता है, परन्तु यह भी सम्भव है कि, ग्रंथन करने वाले व्यक्तियों ने स्वबुद्धया न केवल इनकी व्याख्या ही प्रस्तुत की हो, अपितु अपने समय के अनुरूप कुछ बातें भी जोड़ दी हों। इतना होने के बाद भी बृहद्देशी का महत्व परवर्ती ग्रन्थकारों की दृष्टि में घटा नहीं है। दुर्भाग्य की बात यह है कि, यह ग्रन्थ आज हमें खण्डित रूप में ही प्राप्त है। देशी, नाद, श्रुति स्वर सम्बन्ध एवं देशी-राग विषयक अंशों के सन्दर्भ में मतङ्ग परवर्ती आचार्यों के लिये विशेष रूप से अनुकरणीय रहे हैं। इनके अतिरिक्त स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, गीति, जाति, राग, प्रबन्ध आदि सभी विषयों के प्रतिपादन में बृहद्देशी की अपनी मौलिकता है। वाद्य, ताल एवं नृत्य सम्बन्धी अध्याय यद्यपि आज अप्राप्य हैं तथापि चित्रा विपंची, एकतन्त्री, वैणिक-लक्षण, वंश, मधुकरी, मृदंग, मार्दङ्गिक-लक्षण, डक्का-लक्षण, ढाक्किक लक्षण, रूंजा के वर्ण, ताल, संयुक्त हस्त, चरण-भेद, देशी-पाद, पाटमणि, वाद्य पद्धति, वाद्य चतुष्टय आदि विषयक बृहद्देशी के जो अंश हमें परवर्ती ग्रन्थों में उद्धृत रूप प्राप्त होते हैं, उनसे बृहद्देशी के विषय-विवेचन की विशदता एवं ग्रन्थ के महत्व का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

टिप्पणियाँ

1. (अ) मतङ्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम्।
अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य॥
स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
रघुवंश / सर्ग 5 / श्लो 53-54.

(ब) महाभारत / आदिपर्व / 65 श्लो.

(स) तावन्मुनेर्मतङ्गस्य सहसा क्षुभितं मनः।
मतंगपारमेश्वरागम / विद्यापाद प्रथम पटल / श्लो. 7

2. (अ) ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिकोशं भ्रातरौ तदा।
क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे॥

(ब) न तत्राक्रमितुं नागाः शक्नुवन्ति तदाश्रमे ।
ऋषेस्तस्य मतङ्गस्य विधानात्तच्च काननम् ।।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ।।

रामायण अरण्यकाण्ड / सर्ग 7 / श्लो. 28

3. हम्पी में ऋष्यमूक के राममन्दिर के पास स्थित पहाड़ी आज भी मतंग पर्वत के नाम से जानी जाती है।

ऐतिहासिक स्थानावली / पृ० 519

4 शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् ।।
तस्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् । मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ।।
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महावने । ... . ।।

रामायण / अरण्यकाण्ड / सर्ग 74 / श्लोक 20, 21, 22

5. पंपासर के निकट पश्चिम में पर्वत के ऊपर कई जीर्ण-शीर्ण मंदिर दिखलाई पड़ते हैं। पर्वत में एक गुफा है, जिसे शबरी की गुफा कहते हैं।

ऐतिहासिक स्थानावली / पृ० 519

6. रामायण / किष्किंधाकाण्ड / सर्ग 11

7. बभार यत्रास्य पुरा काले दुर्गे महात्मनः ।
दारान्मतङ्गो धर्मात्मा राजर्षिर्व्याधितां गत ।।
अतीतकाले दुर्भिक्षे यत्रैत्य पुनराश्रमम् ।
मुनिः पारेति नद्या वै नाम चक्रे तदा प्रभुः ।।
मतङ्गं याजयांचक्रे यत्र प्रीतमनाः स्वयम् ।
त्वं च सोमं भयाद्यस्य गतः पातुं सुरेश्वर ।।

महाभारत / आदिपर्व / 65 / श्लो० 31, 32, 33

8. देव्यायामल उक्तं तद्द्वापञ्चाशाह्व आह्निके ।
तदेव अर्थद्वारेण आह देव एव गुरूत्वेन तिष्ठासुर्दशधा भवेत् ।।
दशधात्वमेव दर्शयति उच्छुष्मशवरचण्डगु-मतङ्गघोरान्तकोग्रहलहलकाः ।
क्रोधी हुलुहुलुरेते दश गुरवः शिवमयाः पूर्वे ।।
ते स्वांशचित्तवृत्ति·क्रमेण पौरुषशरीरमास्थाय ।
अन्योन्यभिन्नसंवित्क्रिया अपि ज्ञानपरिपूर्णाः ।।
सर्वेऽलिमांसनिधुवनदीक्षार्चनशास्त्रसेवने निरताः ।
अभिमानशमक्रोधक्षमादिरवान्तरो भेदः ।।
अन्तको यमः । यदुक्तं तत्र
"दश रूद्रा महाभागास्तन्त्रे गुरुवराः स्मृताः ।

तन्त्रालोक / आह्निक 28 / श्लो० 390-91 92-93

क्षमी आमिषलौलो च यज्ञे पशुनिपातकः ।।
मतङ्गांशसमुद्भूतो गुरुः शास्त्रार्थवेदकः ।

तन्त्रालोक / पृ० 3273

9. भारतीय संस्कृति और साधना / पृ० 226

10. वंशातोद्यमिति पूर्वं भगवन्महेश्वराराधनसाधनं मतङ्गमुनिप्रभृतिभिर्वेणुर्निर्मितं ततो वंश इति प्रसिद्धम् ।

अभिनव भारती / पृ० 135

11. ततश्चासौ मुनिः श्रीमाञ्ज्ञात्वाभ्रष्ट मनः शिवात् ।
आदाय तरसा वेणुं सुसममृजुमव्रणम् ॥
श्लक्ष्णत्वचं सुनिष्णातं कृत्वा छिद्रैरलंकृतम् ।
तदोत्पादितवाल्लेशद्ध्वनिं सप्तस्वरान्वितम् ॥

मतंगपारमेश्वरागम् / विद्यापाद प्रथम पटल / श्लो० 9, 10

12. तथा तदनुसारेण शाण्डिल्यः कोहलोऽपिच ।
दत्तिलश्च मतङ्गश्च ये चान्ये तत्तनूद्भवाः ॥

रमार्णवसुधाकर / प्रथम विलास / श्लो० 51

13. नाट्यशास्त्र 1/24/40

14. शुक्ला कृष्णेति नद्यौ द्वे विमानादुत्तरे शुभे ।
झिल्लिकातनये पुण्ये मतङ्गस्य स्नुषे उभे ॥
तयोः पती च विख्यातौ दत्तिलः कोहलोऽपि च ।
मतङ्गस्य मुनेः पुत्रौ गीतशात्रविशारदौ ॥
तयोः पत्न्यौ च तौ नद्यौ झिल्लिकातनये उभे ।
कोलदेवस्य पूजार्थं नदीरूपमवापतुः ॥

ए हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर / पृ० 824

15. प्रतिलोमानुलोमाभ्यामस्यैव खलु या क्रिया ।
विश्शृङ्गाटकबन्धाख्यं मतङ्गस्तदुवाच ह ॥

संगीतरत्नाकर / 4 / पृ० 117

□

Matangamuni, The Writer Of Brihaddeshi A Factual Introduction Of The Author

(Dr. Anil Bihari Beohar)

Editor's Summary

Matanga the writer of Brihaddeshi is a very wellknown personality in the world of music. The eminent musicologist like Abhinava Gupta, Nanyadeo, Sharngadeo, Kallinath, Simha Bhupal, Parshvadeo etc. have all remembered Matanga with great respect. Perhaps no one has been remembered in such a huge contexts by the later authors as Matanga has been. But in fact there is no direct available source for the identity of the author. To reach the reality we have to depend on indirect or secondary sources which are hither and thither scatterred on various spots to the references of Matanga. These sources are the texts like Ramayana, Mahabharata, Devibhagawat, Haribansh Purana, Deviyamal and Matanga Parmeshwaragam (both, the tantratexts), Kadambari, Raghubansh, Kuttanimat Kavyam, Sadukti Karanamrita, Suktimuktawali, Sharngadhar Paddhati; Rasarnawa Sudhakar, Kohal Rahasyam, various music texts as discribed in the begining as well as some relevent statements of the modern texts like 'India as seen in the Kuttanimat of Damodar Gupta', 'the history of classical Sunskrit Literature' etc.

On the basis of the informations gathered through above sources Dr. Anil Bihari Beohar has revealed interesting and useful facts about Matanga which were proved to be a mystery for the scholars till date. Dr Beohar on the basis of his hypothesis takes us to the conclusion that the entity of Matanga Muni the author of Brihaddeshi is unquestioned but in the texts of music there are a number of contradictory statements which put us intoa dilema in establishing any chronological relationship of the author (Purvaparsambhandha) with the others.

Although unfortunately the available text of Matanga is found in incomplete form still the great Muni's versions have proved to be the ideal guidelines for the later scholars and referred by them in various contexts like Deshi, Naad Sruti, Swara, Deshiraagas etc. Besides, Brihaddeshi has its own originality on the subject like Swara, Grama, Murchhana, Geeti, Jati, Raaga, Parbhandha etc. Though many important chapters of Brihaddeshi like Vadya, Taal and Nritya are not available in the text still the discription of the musical instruments like Chitra, Vipanchi, Flute, Mridanga, as well as the terms like Taal, Hast, Charanabheda, Vadya Chatushtaya which are most useful in view of evaluating the development and importance of the subject matter of Brihaddeshi.

केवल अक्षरों या वर्णों की संख्या के नियमन पर विचार होता है। पदगत रचना के प्रारूप (Patterns) सरगम में, और सितार-सरोद जैसे प्रहारयुक्त तन्त्रीवाद्यों में, सभी अवनद्ध वाद्यों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। यों तो घर्षण—वह चाहे गज से हो या फूँक से—में भी ये प्रारूप बनते ही हैं किन्तु प्रहार में इनका रूप अधिक स्पष्ट होता है। 'ध्रुवा', 'गीतक' और 'प्रबन्ध' में क्रमशः लघु गुरु-विन्यास से बने वार्णिक वृत्तों, अथवा चार पादों में विभाजन से हटकर विन्यास के अन्य प्रारूपों, चतुर्मात्रिक गणों और वार्णिक तथा मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। आज भी मौखिक परम्परा में बीन, सितार या सरोद में मिज़राब या जवे के बोलों के प्रसङ्ग में 'छन्द' शब्द का प्रयोग भरपूर होता है। तबला पखावज के बोलों में भी 'छन्द' की झलक दिखाई देती है और इस शब्द का प्रयोग भी होता है। इस प्रकार छन्द सङ्गीत में सर्वत्र व्याप्त है, उसका प्रत्यक्ष उल्लेख हो या न हो।

साहित्यशास्त्र में शब्द और अर्थ के 'सहित' भाव पर विचार होता है। शब्द के समकक्ष स्वर का संगीत में स्थान है। काव्य का शरीर यदि शब्द से बनता है तो गेय का शरीर स्वर से। काव्य में शब्द या पद की रचना में समास की बहुलता या विरलता के आधार पर रीति का निरूपण हुआ हैं। उसके समकक्ष संगीतशास्त्र में गीति का विचार है, जिसमें प्रमुख रूप से स्वरों के सरल अथवा वक्र प्रयोग, गमकों की बहुलता अथवा विरलता आदि का विचार विषय-निरूपण का आधार बना है। गुण-दोष, अलंकार भी दोनों शास्त्रों में समानरूप से निरूपण का विषय बने हैं। काव्य में शब्द और अर्थ के गुण-दोष कहे गये हैं तो सङ्गीत में गायक, कण्ठ और गीत, उसी प्रकार वादक, हस्त और वाद्य के गुण-दोष कहे गये हैं। काव्य में अलंकार का दर्शन शब्द और अर्थ में किया गया है और संगीत में उसका सम्बन्ध केवल स्वर से है। आज अलंकार को 'पलटे' का पर्याय माना जाता है, किन्तु अलंकार का प्राचीन अर्थ उससे अधिक व्यापक है, जिसमें बाद के गमक का भी समावेश है। विस्तारभय से व्याख्या का यहाँ अवकाश नहीं है। इतना अवश्य कहना होगा कि गेय में सार्थक पद के माध्यम से काव्य क शब्दालंकारों का सहज प्रवेश हो जाता है।

3. **चित्तसम्बन्धो चिन्तन**—मनोवृत्तियों को लेकर नाट्य के प्रसङ्ग में जो विचार हुआ है, उसकी निष्पत्ति भाव और रस में हुई है। यह विचार सभी कलाओं में व्याप्त है। संगीत शास्त्र में भी राग, प्रबन्ध, नृत्य के प्रसंग में विशेष रूप से रसों और भावों का उल्लेख हुआ है। विस्तार के लिये यहाँ अवकाश नहीं है। इस चिन्तन का सार यह है कि 'लोक' अर्थात् जीवन में हमारी चित्त-वृत्तियाँ देश-काल-पात्र के साथ जुड़ी रहती हैं, इसलिये हम उनके प्रति तटस्थ नहीं रह पाते। तादात्म्य और तटस्थता दोनों एक साथ रहें, यह तभी हो पाता है जब जीवन की अवस्थाएं नाट्य अथवा किसी अन्य कला के माध्यम से प्रस्तुत की जायें। तब चित्तवृत्तियों का आस्वादन सम्भव होता है और आस्वादन का अनुभव ही रस है। (देखें लेखिका की पुस्तक 'रस सिद्धान्त : मूल, शाखा, पल्लव और पतझड़)

4. **पुरुषार्थ सम्बन्धो चिन्तन**—'पुरुषार्थ' भारतीय संस्कृति का केन्द्र-बिन्दु है। मानव-जीवन के चार अर्थ या प्रयोजन माने गए हैं—धर्म अर्थात् नीतिमूलक आचरण, 'अर्थ' अर्थात् जीवनोपयोगी सभी पदार्थ, 'काम' अर्थात् आत्म-विस्तार की कामना और 'मोक्ष' अर्थात् आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति और निरतिशय सुख-स्वरूप होना। संगीत को इन चारों पुरुषार्थों का समर्थ साधन माना गया है। है। संगीतशास्त्र पुरुषार्थ के विचार को पूर्ण रूप से आत्मसात् किये हुए है।

5. **देश-काल सम्बन्धो चिन्तन**—इस चिन्तन का सीधा सम्बन्ध ज्योतिष से हैं। वैसे देश और काल

पर थोड़ा-बहुत विचार हर दर्शन में हुआ है। काल की चक्रिक गति के स्वीकार का स्पष्ट प्रभाव ताल के स्वरूप पर है। देश का विचार संगीत शास्त्र के ग्रन्थ बृहद्देशी में विशेष रूप से हुआ है। 'ध्वनि' का अनुभव 'देश' के अनुसार होता है, अर्थात् ध्वनि सामने-पीछे, बाएं-दाएं ऊपर-नीचे कहाँ से आ रही है, इसका अनुभव होता है। इसलिए ध्वनि देशी होती है, इस चर्चा से इस ग्रन्थ का आरम्भ होता है। फिर मार्ग के प्रतियोगी (Counter part) 'देशी' का सम्बन्ध भी देश-देश में रहने वाले जनों से है। रागों की भाषाओं (प्रकारों) की एक कोटि भी देशजा है, जिसमें-सैन्धवी, गुर्जरी, सौवीरी, कालिङ्गी, सौराष्ट्री जैसे नाम मिलते हैं। नाट्यशास्त्र की १८ जातियों में से आन्ध्री नाम तो सीधे देश से जुड़ा है, शेष नामों में भी 'गान्धार' और 'उदीची', ये दो घटक देश-वाचक कहे जा सकते हैं, यद्यपि गान्धार स्वर-वाचक भी है। तात्पर्य इतना ही है कि देश का विचार संगीतशास्त्र में बराबर होता रहा है। काल तो संगीत का मूल तत्त्व है ही, क्योंकि 'श्रव्य' की निष्पत्ति काल में ही होती है। सुनना क्रमिक होता है। इसलिए उसमें काल अनिवार्य है।

6. दर्शन सम्बन्धी चिन्तन—वेदान्त और सांख्य दर्शनों का प्रभाव संगीतशास्त्र में पिण्डोत्पत्ति अर्थात् जीव द्वारा शरीर-धारण की प्रक्रिया में और सत्त्व-रजस्-तमस् इन तीन गुणों के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादन में प्रमुख रूप से दिखाई देता है। पूर्व-मीमांसा का प्रभाव विषय-प्रतिपादन में 'विधि' 'परिसंख्या' जैसे शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट होता है। (देखिए डा० विमला मुसलगाँवकर की पुस्तक— "भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन")

उपसंहार—इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय संगीत शास्त्र में भारतीय चिन्तन की अनेक धाराओं का घुला-मिला रूप प्राप्त होता है। ये सभी धारायें परस्पर जुड़ी हुई हैं। भारतीय संस्कृति की जीवन के प्रति अखण्ड दृष्टि संगीतशास्त्र में भली-भाँति उजागर होती है।

●

भरत ने नाटच को 'सार्ववर्णिक' वेद कहा है; क्योंकि अन्य वेद केवल द्विजमात्र के लिए उपयोगी तथा उपादेय होते हैं, परन्तु नाट्य का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति इस आनन्द का अधिकारी माना गया है। नाटक का प्रभाव किसी एक ही प्रकार की अभिरुचिवाले लोग के ऊपर नहीं होता, प्रत्युत यह सार्वजनिक मनोरंजन होने के कारण समाज के लिए ग्राह्य तथा उपादेय होता है। नाटक का विषय भी सीमित नहीं होता, प्रत्युत्त तीनों लोको के भावों का अनुकीर्तन इसमें रहता है। यह शक्तिहीनों के हृदय में शक्ति का संचार करता है, शूरवीरों के हृदय में उत्साह बढ़ाता है, अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करता है और विद्वानों में विद्वत्ता का उत्कर्ष करता है। नाटक है लोकवृत्त का अनुकरण। इस विशाल विश्व के पट पर सुख-दुःख की प्रवृत्तियाँ अपना खेल दिखाया करती हैं तथा मानव-जीवन को सुखमय या दुःखमय बनाती है उन सबका चित्रण नाटक का अपना विशिष्ट उद्देश्य है। इसलिए भरत-मुनि का कहना है कि कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो इस नाटच में नहीं दिखलाई पड़ता।

सौजन्य—संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय।

पर थोड़ा-बहुत विचार हर दर्शन में हुआ है। काल की चक्रिक गति के स्वीकार का स्पष्ट प्रभाव ताल के स्वरूप पर है। देश का विचार संगीत शास्त्र के ग्रन्थ बृहद्देशी में विशेष रूप से हुआ है। 'ध्वनि' का अनुभव 'देश' के अनुसार होता है, अर्थात् ध्वनि सामने-पीछे, बाएं-दाएं ऊपर-नीचे कहाँ से आ रही है, इसका अनुभव होता है। इसलिए ध्वनि देशी होती है, इस चर्चा से इस ग्रन्थ का आरम्भ होता है। फिर मार्ग के प्रतियोगी (Counter part) 'देशी' का सम्बन्ध भी देश-देश में रहने वाले जनों से है। रागों की भाषाओं (प्रकारों) की एक कोटि भी देशजा है, जिसमें-सैन्धवी, गुर्जरी, सौवीरी, कालिङ्गी, सौराष्ट्री जैसे नाम मिलते हैं। नाट्यशास्त्र की १८ जातियों में से आन्ध्री नाम तो सीधे देश से जुड़ा है, शेष नामों में भी 'गान्धार' और 'उदीची', ये दो घटक देश-वाचक कहे जा सकते हैं, यद्यपि गान्धार स्वर-वाचक भी है। तात्पर्य इतना ही है कि देश का विचार संगीतशास्त्र में बराबर होता रहा है। काल तो संगीत का मूल तत्त्व है ही, क्योंकि 'श्रव्य' की निष्पत्ति काल में ही होती है। सुनना क्रमिक होता है। इसलिए उसमें काल अनिवार्य है।

6. दर्शन सम्बन्धी चिन्तन—वेदान्त और सांख्य दर्शनों का प्रभाव संगीतशास्त्र में पिण्डोत्पत्ति अर्थात् जीव द्वारा शरीर-धारण की प्रक्रिया में और सत्त्व-रजस्-तमस् इन तीन गुणों के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादन में प्रमुख रूप से दिखाई देता है। पूर्व-मीमांसा का प्रभाव विषय-प्रतिपादन में 'विधि' 'परिसंख्या' जैसे शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट होता है। (देखिए डा० विमला मुसलगाँवकर की पुस्तक— "भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन")

उपसंहार—इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय संगीत शास्त्र में भारतीय चिन्तन की अनेक धाराओं का घुला-मिला रूप प्राप्त होता है। ये सभी धारायें परस्पर जुड़ी हुई हैं। भारतीय संस्कृति की जीवन के प्रति अखण्ड दृष्टि संगीतशास्त्र में भली-भाँति उजागर होती है।

•

भरत ने नाट्य को 'सार्ववर्णिक' वेद कहा है; क्योंकि अन्य वेद केवल द्विजमात्र के लिए उपयोगी तथा उपादेय होते हैं, परन्तु नाट्य का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति इस आनन्द का अधिकारी माना गया है। नाटक का प्रभाव किसी एक ही प्रकार की अभिरुचिवाले लोग के ऊपर नहीं होता, प्रत्युत यह सार्वजनिक मनोरंजन होने के कारण समाज के लिए ग्राह्य तथा उपादेय होता है। नाटक का विषय भी सीमित नहीं होता, प्रत्युत्त तीनों लोको के भावों का अनुकीर्तन इसमें रहता है। यह शक्तिहीनों के हृदय में शक्ति का संचार करता है, शूरवीरों के हृदय में उत्साह बढ़ाता है, अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करता है और विद्वानों में विद्वत्ता का उत्कर्ष करता है। नाटक है लोकवृत्त का अनुकरण। इस विशाल विश्व के पट पर सुख-दुःख की प्रवृत्तियाँ अपना खेल दिखाया करती हैं तथा मानव-जीवन को सुखमय या दुःखमय बनाती है उन सबका चित्रण नाटक का अपना विशिष्ट उद्देश्य है। इसलिए भरत-मुनि का कहना है कि कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो इस नाट्य में नहीं दिखलाई पड़ता।

सौजन्य—संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय।

भारतीय संगीतशास्त्र में एकाधिक अनुशासनों का योग

—प्रो० प्रेमलता शर्मा

भारतीय सङ्गीतशास्त्र में सङ्गीत पर विचार करने की रीति अनेक अनुशासनों से प्रेरित है। इन अनुशासनों को निम्निलिखित वर्गों में रखा जा सकता है।

1. **शरीर-सम्बन्धी चिन्तन**—इसमें आयुर्वेद, योग और तन्त्र आते हैं।
2. **वाक्-सम्बन्धी चिन्तन**— इसमें शिक्षा, व्याकरण, छन्द और साहित्यशास्त्र का स्थान है।
3. **चित्तसम्बन्धी चिन्तन**—इसमें रससिद्धान्त का प्रमुख स्थान है।
4. **पुरुषार्थ-सम्बन्धी चिन्तन**—जो सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है।
5. **देश-काल-सम्बन्धी चिन्तन**— इसमें ज्योतिष् का प्रमुख स्थान है।
6. **दार्शनिक चिन्तन**— इसमें मीसांसा, वेदान्त, सांख्य आदि का स्थान है।

इन वर्गों पर परिचयात्मक विचार क्रमशः प्रस्तुत है।

1. शरीरसम्बन्धी चिन्तन-नादोत्पत्ति का प्रमुख साधन शरीर को ही माना गया है, जिसे उपनिषद् में दैवी वीणा नाम दिया गया है और सङ्गीतशास्त्र में शारीरी वीणा। इसलिये शरीर ('पिण्ड') की उत्पत्ति अर्थात् माता के गर्भ-धारण से लेकर शिशु के जन्म तक की प्रक्रिया का संक्षिप्त अथवा विस्तृत वर्णन सङ्गीतशास्त्र-ग्रन्थों में मिलता है। प्रथम का उदाहरण है शारदातनय का भावप्रकाश एवं द्वितीय का शार्ङ्गदेव का संगीतरत्नाकर। यह निरूपण सीधे आयुर्वेद से लिया गया है। इसके अतिरिक्त भी आयुर्वेद से प्रभावित चिन्तन संगीतशास्त्र में दो प्रसङ्गों में मिलता है। कण्ठ के वर्गीकरण के प्रसङ्ग में, जहाँ वात-पित्त-कफ और सन्निपात को आधार बनाया गया है।

इसका आरम्भ मतङ्ग की बृहद्देशी में ही हो जाता है। बाद के ग्रन्थों यथा संगीतरत्नाकर में इसका विस्तार हुआ है। प्रबन्ध के निरूपण में 'अङ्ग' और 'धातु' का विचार सीधे आयुर्वेद से प्रभावित है।

आयुर्वेद की दृष्टि से शरीर या 'पिण्ड' के वर्णन के साथ-साथ हठयोग की दृष्टि से चक्रों और नाडियों का निरूपण भी सङ्गीतशास्त्र में मिलता है। इसका सर्वाधिक विस्तृत रूप संगीतरत्नाकर में प्राप्त है। वैसे, नाद-बिन्दु की चर्चा तो बृहद्देशी से ही आरंभ हो जाती है।

तन्त्र की दृष्टि से सात स्वरों के वाचक अक्षरों- 'स—रि—ग - म — प - ध — नि' का बीजाक्षरों की भाँति निरूपण बृहद्देशी में मिलता है और वहीं से तन्त्र का संगीतशास्त्र में प्रवेश लक्षित होता है। आगे चलकर तान्त्रिक पद्धति से रागध्यान देने की रीति सामने आती है। इसका स्पष्ट दर्शन चौदहवीं शताब्दी के ग्रन्थ सङ्गीतोपनिषत्सारोद्धार में होता है और पन्द्रहवीं शताब्दी के सङ्गीतराज में और भी

विस्तार सामने आता है। इस पद्धति में राग के पुंल्लिङ्ग वाचक अथवा स्त्रीलिङ्ग वाचक नाम के अनुसार उसका 'ध्यान' देव या देवी के रूप में दिया जाता है। इस ध्यान में शरीर का वर्ण यानी रङ्ग, वस्त्रों का वर्ण, सिरों और भुजाओं की संख्या आयुध अर्थात् हाथों में धारण किये हुए उपकरण और वाहन ये पाँच बातें सम्मिलित रहती हैं।

2. वाक्सम्बंधी चिंतन - 'शिक्षा' शास्त्र का सम्बन्ध वर्णोच्चारण से है। संगीत का प्रमुख तत्त्व नाद है, किन्तु वास्तव में नाम और वर्ण अभिन्न रूप से जुड़े हैं। इसलिये शिक्षा में वर्णोत्पत्ति का जो क्रम बताया गया है, अर्थात् पहले आत्मा में विवक्षा (कहने की इच्छा) उठना, फिर आत्मा द्वारा मन को नियुक्त किया जाना, मन का कायाग्नि को प्रेरित करना, और कायाग्नि से वायु की ऊर्ध्व गति होना —यही क्रम संगीतशास्त्र में भी स्वरोत्पत्ति के लिये ज्यों का त्यों स्वीकृत एवं वर्णित हुआ है। यह वर्णन बृहद्देशी एवं सङ्गीतरत्नाकर में मिलता है। स्वर, वर्ण और पद व्याकरण शास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं और ये ही सङ्गीतशास्त्र में भी ज्यों का त्यों आये हैं। दोनों शास्त्रों में इन के अर्थ स्थूल रूप से भिन्न हैं, किन्तु उनमें आन्तरिक समानता है। व्याकरण में 'स्वर' की व्याख्या है 'स्वयं राजते' अर्थात् जो स्वयं प्रकाशित होता है। संगीत में 'स्वतो रञ्जयति' स्वर का लक्षण है। स्वयं अर्थात् किसी अन्य अक्षर की सहायता के बिना जो प्रकाशित होता है वह व्याकरण का स्वर है। सङ्गीत का स्वर स्वयं अर्थात् किसी अन्य अर्थ की अपेक्षा के बिना ही श्रोता के चित्त को आनन्द देता है। दोनों 'स्वरों' में 'स्वतः' या 'स्वयं' समान है एक स्वयं प्रकाशित होता है और दूसरा रञ्जन भी करता है।

वर्ण (अक्षर, व्यक्त श्रव्य ध्वनि) भाषा की पहली इकाई है और सङ्गीत में भी स्वर की गति की प्रथम अभिव्यक्ति है वर्ण। 'वर्ण' शब्द का सामान्य अर्थ है रङ्ग। दृश्य में रङ्ग ही विशिष्टता लाता है। भाषा में वर्ण ही विशिष्टता का प्रथम साधन है। उसी प्रकार सङ्गीत में भी विशिष्टता 'वर्ण' से ही आती है। या तो हम किसी स्वर को पुनः पुनः लेते हैं (स्थाई) या क्रमशः ऊँचाई की ओर बढ़ते हैं (आरोही) या नीचे की ओर उतरते हैं (अवरोही) और या तीनों का मिश्रण करते हैं (सञ्चारी)।

पद भाषा में पहली सार्थक इकाई है। संस्कृत भाषा में कोई भी शब्द तब तक प्रयोग के योग्य नहीं माना गया जब तक उसमें सुप् (संज्ञा में लगने वाले) प्रत्यय या तिङ् (धातु—क्रिया वाचक शब्द में लगने वाले) प्रत्यय न लग जायें। इस लिये पद का लक्षण किया गया गया है "सुप् तिङन्तं पदम्" अर्थात् जिसके अन्त में सुप् या तिङ् प्रत्यय लगा हो वह पद होता है। संगीत में सार्थक अथवा निरर्थक दोनों ही प्रकार की वर्णात्मक ध्वनियों के विशिष्ट समूह की संज्ञा पद है। किसी भी भाषा के सार्थक पद तो 'गेय' में आते ही हैं, साथ ही झण्टुं, जगतिय, वलितक, दिगिनिगि, तितिझल, कुचझल, तितिचा" जैसे अर्थहीन अक्षरसमूह भी पद कहलाते हैं। ये पद-समूह नाट्यशास्त्र में 'शुष्काक्षर' अथवा 'वाक्करण' कहे गये हैं। जाति या राग जैसे स्वरसन्निवेश के विस्तार में स्वरों के सञ्चार की जो इकाइयाँ बनती हैं उन्हें भी 'पद' कहा गया है। भाषा में जैसे पदों से वाक्य बनता है, वैसे ही इन स्वरात्मक पदों से जाति या राग का स्वरसन्निवेश प्रकट होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि व्याकरण और संगीत के मूलभूत चिन्तन में कितनी समानता है। व्याकरण के दर्शन 'स्फोट' का जो विचार है उसे सङ्गीत में स्वरगत अनुरणन के रूप में स्थान मिलता है।

छन्दःशास्त्र में पद के लघु-गुरु अक्षरविन्यास अथवा मात्रा-संख्या के अनुसार पदरचना अथवा

तबला के महान जादूगर पण्डित शाम्ता प्रसाद मिश्र 'गुदई महाराज'

—जयप्रकाश सिंह 'सुरमणि'

भारतीय शास्त्रीय संगीत के इतिहास में अनेकों ही विद्वानों एवं कलाकारों ने जन्म लिया है, जिन्होंने अपनी अनूठी प्रतिभा, महान व्यक्तित्त्व एवं कला की अमिट छाप श्रोताओं के मानस पटल पर छोड़ी है। ऐसे महान कलाकारों, विद्वानों एवं मनीषियों को साधारण मानवों की श्रेणी में न रखकर विशेष महापुरुषों की श्रेणी में रखना ही उचित होगा। ये कलाकार किसी तपस्वी से कम नहीं होते, क्योंकि सांसारिकता का त्याग करके सतत् अभ्यास के पश्चात ये कला के शिखर पर आरूढ़ होते हैं। ऐसे कलाकारों को सुनना समझना एवं सम्मान देना हमारा परम कर्तव्य है। तबला के महान जादूगर पं० शाम्ता प्रसाद मिश्र (गुदई महाराज) ऐसी ही महान विभूतियों में से एक थे।

संक्षिप्त जीवन-परिचय—लय एवं ताल के प्रकाण्ड विद्वान भारतीय संगीत के क्षितिज पर ध्रुवतारा के समान चमकने वाले लाखों संगीत श्रोताओं के हृदय में विशिष्ट स्थान रखने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी पं० शान्ता प्रसाद मिश्र का जन्म 20 जुलाई 1920 में वाराणसी स्थित कबीरचौरा नामक मुहल्ले के एक पारम्परिक सांगीतिक परिवार में हुआ था। आप के पिता पं० वाचा मिश्र अपने समय के एक उच्चकोटि के तबला वादक थे। आप की माता श्रीमती भागमानी देवी एक धर्म परायण एवं विदुषी महिला थीं। बचपन में जब शाम्ता प्रसाद तीन-चार वर्ष के थे, तब वे अपनी कोमल उंगलियों से दाहिने एवं बायें तबले पर इस प्रकार हरकत करते थे जैसा कि गोदना गोदने वाले सुई से किसी के शरीर पर गोदना गोदते समय करते हैं। उनकी इस आदत को देखकर उनके पिता जी ने उनका नाम गुदई रख दिया और फिर परिवार के सभी लोग इन्हें प्यार से 'गुदई' कहकर पुकारने लगे। यही नन्हा बालक आगे चलकर संगीत-जगत् में 'गुदई महाराज' के नाम से विख्यात हुआ।

गुदई महाराज जब 8 वर्ष के थे तभी उनके पिता का स्वर्गवास हो गया जिसके फलस्वरूप उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गयी। मरते समय उनके पिता अपने पीछे दो बच्चों गुदई एवं सुधई तथा विधवा पत्नी श्रीमती भागमानी देवी को छोड़ गये थे। परिवार के भरण-पोषण का सम्पूर्ण दायित्व अब श्रीमती भागमानी देवी के कंधों पर जा पड़ा। जिस दायित्व को उन्होंने पूरी निष्ठा कठोर परिश्रम एवं अदम्य साहस से निभाया। गुदई महाराज जी की संगीत शिक्षा का शुभारम्भ उनके शैशव काल में ही उनके पिता पं० वाचा महाराज जी के निर्देशन में हुआ। किन्तु अल्पायु में ही पिता का असामयिक निधन हो जाने के कारण महाराज जी के तबला-शिक्षण में बाधा पड़ गयी। गरीबी से जूझती हुई उनकी माता जी ने उन्हें आगे की तबला-वादन की शिक्षा हेतु उन्हें बनारस घराने के सुप्रसिद्ध तबला वादक श्री विक्कू महाराज जी को सौंप दिया। विक्कू महाराज जी के सानिध्य में रहकर ही महाराज जी ने तबला वादन की उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त की एवं गुरु के

निर्देशानुसार कठोर अभ्यास करके संगीत जगत् में ख्याति लब्ध स्थान प्राप्त किये। अपनी गरीबी पर प्रकाश डालते हुए महाराज जी ने कुछ दिनों पूर्व दिल्ली दूरदर्शन पर प्रसारित "ग्रेट मास्टर्स" (Great Masters) नामक कार्यक्रम के अन्तर्गत एक साक्षात्कार में कहा था, 'बचपन में घर की हालत इतनी खराब थी कि मेरी माँ प्रतिदिन पानवाड़ी कि दूकान से चार किलो सुपाड़ी लाती थीं। सबेरे चार बजे माँ मुझे जगाकर तबला अभ्यास के लिए अपने सामने बैठा देती थी। माँ के सुपाड़ी काटने की गति कुछ ऐसी थी कि 4 किलो सुपाड़ी वह ठीक 4 घण्टे में काट लेती थी। इस प्रकार प्रतिदिन लगभग 8 बजे माँ मुझे सुपाड़ी काट लेने के पश्चात रियाज से उठा देती थी रियाज करने के पश्चात मैं नित्यक्रिया में लग जाता था और माँ दूकान पर कटी हुई सुपाड़ियाँ देकर 4 आने पैसे लाती थी उसी कमाई से हम लोगों का खर्च चलता था।'

गुदई महाराज जी की स्कूली शिक्षा नहीं के बराबर थी। उनकी स्कूली शिक्षा के विषय में जब मैंने उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री कुमार लाल जी से पूछा तो उन्होंने कहा 'यों तो पिता जी अधिक पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु उन्हें सामान्य विषयों का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। वे ज्योतिष विद्या की भी जानकारी रखते थे एवं हिन्दी भाषा में पत्र इत्यादि लिख सकते थे।' (श्री कुमार लाल मिश्र 23-7-94)। शिक्षा का माप-दण्ड विद्यालय में प्रवेश लेकर केवल उपाधियाँ ग्रहण करना मात्र ही नहीं होता। विद्यालय न जाकर भी महापुरुष लोग ज्ञानार्जन कर लेते हैं। गुदई महाराज ऐसे ही महापुरुषों में से एक थे।

गुदई महाराज अत्यन्त ही परिश्रमी एवं संगीत के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित व्यक्ति थे। इस सम्बन्ध में श्री कुमार लाल जी का कथन है, "मेरे पिता जी कमाने के लिए दालमण्डी में तबला बजाने जाया करते थे क्योंकि उस समय बनारस में शास्त्रीय संगीत की पवित्र गंगा यही प्रवाहित होती थी। अर्थात संगीत सच्चे अर्थों में उस समय दालमण्डी में ही पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा था। सायंकाल घर लौटने पर वे सारी रात तबले की साधना में लीन रहते थे। प्रातः काल सूर्य की तेज धूप जब उनके मस्तक पर पड़ती थी तब उनका ध्यान भंग होता था और तब वे अपना अभ्यास समाप्त करते थे।"

(श्री कुमारलाल मिश्र 23-7-94)

महाराज जी के परिश्रमी स्वभाव के विषय में अपनी अन्तर भावनाओं को व्यक्त करते हुए सुविख्यात बेला वादक डा० आर० पी० शास्त्री ने कहा, "गुरुद्वारा प्रदत्त जो भी सामग्री उन्हें प्राप्त थी उसको उन्होंने अपनी कड़ी मेहनत एवं तपस्या से ऐसा माँज डाला था कि उसमें एक चमत्कार पैदा हो गया था जो श्रोताओं को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। यह सब संगीत के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धाभक्ति, एवं कड़ी मेहनत का ही परिणाम था। गुदई महाराज वास्तव में एक महान् तबला वादक ही नहीं अपितु संगीत के एक महान् साधक एवं सच्चे पुजारी थे।"

(डॉ० आर० पी० शास्त्री—22-7-94)

किसी विद्वान ने सत्य लिखा है कि "Coming events cast Their Shadows before" अर्थात "होनहार वीरवान के होते चिकने पाव"। महाराज जी के संगीत साधना के जिस वृक्ष के फल का रसास्वादन श्रोतागण उनके युवाकाल में कर रहे थे लोगों को उसकी मिठास का अनुभव महाराज जी के सांगीतिक जीवन के उषा-काल में ही होने लगा था। महाराज जी जब तबले का अभ्यास किया करते थे तब उनके तबले की मधुर ध्वनि उनके घर के सामने स्थित डी० ए० वी० कालेज के मैदान तक स्पष्ट रूप से श्रव्यगोचर होती थी और विद्यालय

Association of Various Disciplines With Indian Musicology

(Prof. Premlata Sharma)

Editor's summary

Prof. Premlata Sharma throgh her brief but most substantive writing has revealed that in Indian Musicology, thoughts on musical subjects are inspired and associated with various disciplines viz.—

1. Ayurveda, Yoga and Tantra—dealing with the body.
2. Shiksha, Vyakaran Chhanda and Sahitya Shastra dealing with Vaak.
3. Rasa Siddhanta – mainly related with Chitta.
4. Purushartha (Dharma, Artha, Kama, Moksha) the centre point of the Indian philosophy.
5. Jyotish – dealing with Time and Space.
6. Mimansa, Vedanta, Sankhya—dealing with Philosophical thought.

Prof. Sharma on the basis of minute observation of the related texts has further discussed and explained the whole subject matter in a very logical and specific manner which thematically can be understood as follows :—

Subject (Musical thought)	Name of the Discipline related to	Referred/accepted by
Naadotpathi and its main medium 'body' (Daivi veena or Shariri veena) which includes the description of total process 'from conception (by a mother) to the birth of a child'.	Ayurveda	Bhawa Prakash (Sharada Tanaya) Sangeet Ratnakar Sharngdeo
Classifications of voice (Kantha i.e Vaata, Pitta, Kapha and Sannipat; Anga and Dhatu of the Prabandha.	Ayurveda	Brihaddeshi (Matanga) Sangeet Ratnaker
Naad, Swara, Chakra, Naad-Bindu.	Hathayoga	Brihaddeshi Sangeet Ratnakar
Signifying seven alphabets Sa, Re, Ga, Ma, Pa, Dha, Ni (सा) (रे) (ग) (म) (प) (ध) (नी)	Tantra	Brihaddeshi

For the seven musical notes; Raaga-dhyana tradition.	Tantra	Sangeetopanishat-Saroddhara Sudha-Kalash), Sangeetaraja (Maharana Kumbha)
Swarotpatti;	Shiksha Shastra	Brihaddeshi Sangeet Ratnakar
Swara (in Vyakarana 'Swayam-raajate' and in Sangeet 'Swato-ranjayati') Varna; Pada; Sphot (of Vyakarana and Swaragat Anuranana in music against it)	Vyakarna Shastra	Brihaddeshi Sangeet Ratnakar
Dhruva, Geetak, Prabhandha etc. Shuskak-Shara, Bol of Tabla and Phakhawaja	Chhanda	Various music texts
Guna-dosha niroopana in various Contexts; Saarthaka Pada in geya etc.	Sahitya Shastra	Various music texts
Rasaswadana in the perspective of Raaga, Prabhandha, Nritta/Nritya etc.	Rasa Siddhanta	Various music texts
The context of the concept 'Purusharthas as the ultimate goal of human lefe and music the only means to achieve them.' (धर्मार्थकाममोक्षाणाम् इदमेवैक साधनम् ।)	Thinking about Purusharthas	Various music texts
Experience of Dhvani', Taal, Deshi in several contexts, Bhasas of the raagas etc.	Jyotish (Time and Space)	Brihaddeshi Sangeeta Ratnakar etc.
Use of the technical terms like 'Vidhi', 'Parisankhya' etc. Pindotpatti; Satwa, Rajas and Tamas gunas etc.	Meemansa, Vedanta and Sankhya	Various music texts

□

के छात्र मैदान में खड़े होकर उनका तबला-वादन सुनकर आनन्द से झूम उठते थे।

आरम्भ में महाराज जी की वादन-प्रतिभा का ज्ञान संगीत प्रेमियों को नहीं था। जब वे 18 वर्ष के हुए तब इलाहाबाद में एक बड़ी संगीत सभा का आयोजन हुआ था जिसमें देश के मूर्धन्य कलाकारों ने भाग लिया था। इस संगीत सभा में महाराज जी को भी आमन्त्रित किया गया था। निमंत्रण पाकर महाराज जी खुशी से फूले न समाये क्योंकि उनके जीवन में यह पहला अवसर था जबकि उन्हें किसी महत्वपूर्ण संगीत सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था। सम्मेलन प्रारम्भ हो गया किन्तु महाराज जी चुपचाप अकेले ग्रीन रूम में बैठे हुए थे क्योंकि उनको जानने वाला कोई भी कलाकार नहीं था। किससे कहें, किसके साथ कार्य कम प्रस्तुत करे ? गुदई महाराज के मन में यही विचार बार-बार उठते थे। इतने में उस्ताद अला-उद्दीन खां साहब की दृष्टि महाराज जी के उदास चेहरे पर पड़ी। वे बोले, बेटा! क्यों उदास हो? तुम्हारा क्या नाम है? कहाँ से आये हो? महाराज जी बोले बनारस से आया हूँ, तबला बजाता हूँ। मुझे लोग गुदई महाराज कहते हैं। उस्ताद जी को महाराज जी की उदासी का कारण बिना बताये ही समझ में आ गया। वे बोले चिन्ता मत करो तुम मेरे साथ बजाओगे। फिर क्या था? गुदई महाराज जी ने तुरन्त खां साहब के साथ ग्रीन रूप में एक हल्का-फुल्का पूर्वाभ्यास किया। कुछ देर पश्चात उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब इस 18 वर्षीय नवयुवक के साथ मञ्च पर उपस्थित हुए। खां साहब का सरोद वादन प्रारम्भ हुआ। आलाप, जोड़ एवं झाला प्रस्तुत करने के पश्चात खां साहब जैसे ही मसीत खानी गत प्रारम्भ किये, गुदई महाराज जी भूखे शेर की तरह बनारस घराने की शैली में परन बजाना आरम्भ किये। उनके हाथ की थिरकती हुई उंगलियों को देखकर श्रोतागण आनन्द विभोर हो उठे एवं उपस्थित संगीतज्ञ तो मानो स्तब्ध ही रह गये। महाराज जी के मुलायम हाथ तबले पर इस प्रकार पड़ रहे थे मानो गर्मी में पसीने से लतपथ शरीर पर सावन की फुहार पड़ रही हों तथा हाथ की तैयारी इतनी जबरदस्त थी कि वे जब भी कोई बजनघर कायदा या टुकड़ा बजाते तो ऐसा लगता था मानो आसमान में बिजली कड़क रही हो। खां साहब के साथ उन्होंने बेजोड़ संगत की। इस कार्यक्रम से संगीत जगत में उनका काफी नाम हुआ। लोग उन्हें तबला वादक के रूप में पहचानने लगे और उनको संगीत समारोहों में भाग लेने के लिए अवसर भी प्राप्त होने लगे। (महाराज जी ने उपर्युक्त चर्चा अपने एक टी० वी० साक्षात्कार के समय स्वयं ही की थी।)

महाराज जी के जीवन में सन् 1950 से लेकर सन् 1955 तक का काल स्वर्ण युग के रूप में माना जाता है क्यों कि यह समय उनकी प्रसिद्धि की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण था। सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक व्ही० शान्ताराम जिस समय अपनी प्रसिद्ध फिल्म 'झनक-झनक पायल बाजे' की रचना कर रहे थे तो उस समय उन्हें उस फिल्म में एक तबला वादक की आवश्यकता महसूस हुई उन्होंने उच्चकोटि के तबला वादकों को साक्षात्कार हेतु बम्बई आमंत्रित किया। इस साक्षात्कार में गुदई महाराज ने अपना वर्चस्व सिद्धकर दिया और उक्त फिल्म के लिए व्ही शान्ताराम ने आपका ही चुनाव किया। यह घटना सन् 1952–53 के आस-पास की है। फिल्म रिलीज होने के पश्चात महाराज जी की लोक-प्रियता और भी तेजी से जनसाधारण में फैलने लगी। फिल्म के विभिन्न गीतों के साथ बजते हुए उनके तबले की मधुर ध्वनि संगीत प्रेमियों के हृदय में घर कर गयी। बाद में महाराज जी ने अन्य अनेकों फिल्मों में अपना तबला वादन प्रस्तुत किया।

इसके अतिरिक्त सन् 1953 में ही गन्धर्व महा-

विद्यालय द्वारा दिल्ली में एक बड़े संगीत सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन के आयोजक श्री विनयचन्द मुदगल जी थे, इस समारोह में देश के चोटी के कलाकारों ने भाग लिया था। इस सम्मेलन में गुदई महाराज जी ने चमत्कारिक तबला वादन प्रस्तुत किया इस कार्यक्रम के माध्यम से उनकी ख्याति और भी अधिक बढी क्योंकि उक्त संगीत सम्मेलन की रेकार्डिंग को ऑल इन्डिया रेडियों के सभी केन्द्रों से एक साथ प्रसारित किया गया था जिसके फलस्वरूप देश के कोने-कोने में संगीत प्रेमियों ने महाराज जी के अभूतपूर्व तबला-वादन को सुना एवं मुक्त कण्ठ से उनकी सराहना की।

सन् 1954 में भारत वर्ष के तत्कालीन प्रधान मन्त्री स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू जी ने पहली बार भारतवर्ष के संगीतज्ञों का एक प्रतिनिधि मण्डल रूस भेजा जिसमें सुविख्यात नृत्यांगना सितारा देवी, उस्ताद विलायत अली खां, उस्ताद बहादुर खां इत्यादि चोटी के कलाकारों के साथ भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व करने के लिए महाराज जी को भी आमन्त्रित किया गया। इस प्रतिनिधि मण्डल में भारतवर्ष में प्रचलित सभी सगीत विधाओं जैसे हिन्दुस्तानी संगीत, कर्नाटक संगीत, गायन वादन नृत्य की अन्यान्य भारतीय विधाओं के उच्च कोटि के कलाकार शामिल थे। रूस में इन्होंने अत्यन्त उत्कृष्ट तबला सोलो प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि रूसी वैज्ञानिकों के एक शिष्ट मण्डल को तबले पर तीव्र गति से थिरकती हुई महाराज जी की उगलियों को देखकर विश्वास ही नहीं हुआ कि वे हाथ से बजा रहे हैं। उन्हें यह सन्देह था हो गया कि गुदई महाराज जी ने अपने हाथ में कोई यन्त्र लगा रखा है जिसके फलस्वरूप उनकी उगलियाँ इतनी तेज गति से थिरक रही हैं। उन्होंने महाराज जी के हाथ का परीक्षण किया किन्तु परीक्षण के पश्चात कुछ न मिलने पर वे आश्चर्य से अवाक रह गये। रूस की इस सफल सांगीतिक यात्रा से महाराज जी की ख्याति में चार चाँद लग गये। उसके पश्चात वे अनेकों बार विदेश गये और वहाँ अपनी कला का सफल प्रदर्शन किया।

गुदई महाराज का दामपत्य जीवन सुखमय एवं पारिवारिक शान्ति से परिपूर्ण था। उनका विवाह सन् 1940 में हुआ था। उनकी पत्नी का नाम श्रीमती तारादेवी था। तारा देवी ने सन् 1943 में महाराज जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती देविका रानी को तथा 9 जुलाई सन् 1945 ज्येष्ठ पुत्र श्री कुमार लाल मिश्र को जन्म दिया। कुमार लाल मिश्र जी जब 6 महीने के थे तभी तारा देवीजी का जनवरी 1946 में असामयिक निधन हो गया। युवावस्था में ही पति का असामयिक निधन तथा वृद्धावस्था में अचानक पुत्र-बधू के असामयिक देहावसान से उनके हृदय पर दोहरा आघात पहुँचा किन्तु वे हिम्मत नहीं हारीं और पूरे धैर्य एवं साहस के साथ दोनों बच्चों का लालन-पालन बड़े ही लाड़ प्यार से किया। परिवार रूपी रथ के स्त्री एवं पुरुष रूपी हो पहिये होते हैं। इन दोनों में से यदि किसी एक का भी अभाव हो तो परिवार रूपी रथ को सुचारु रूप से चलाना दुष्कर हो जाता है। महाराज जी से अपनी माता द्वारा वृद्धावस्था में परिवार का इतना बड़ा बोझ ढोते देखा न गया। अतः उन्होंने पारिवारिक सुख, शान्ति एवं बच्चों के उचित लालन-पालन को ध्यान में रखते हुए सन् 1950 में अपना दूसरा विवाह कर लिया। उनकी दूसरी पत्नी श्रीमती सीतांगनी देवी जो आज भी परिवार के बीच हैं। श्रीमती सीतांगनी देवी से चार पुत्र श्री कैलाशनाथ मिश्र, श्री शिवशंकर प्रसाद मिश्र, श्री रविशंकर मिश्र तथा श्री गौरीशंकर मिश्र एवं चार पुत्रियाँ श्रीमती रेनुका देवी, श्रीमती मीना देवी, श्रीमती बीनादेवी एवं बेबी हैं। इस प्रकार महाराज जी को दोनों पत्नियों से पांच पुत्रियाँ एवं पाँच पुत्र प्राप्त हुए। महाराज जी ने अपने सभी

बच्चों की शिक्षा-दीक्षा तथा विवाह आदि अपने जीवन काल में ही सुचारु रूप से सम्पन्न कर दिया था।

गुदई महाराज जी का व्यक्तित्व महान था। वे सादा जीवन उच्च विचार यानी Simple living & high thinking की एक जीती जागती मूर्ति थे। अपने जीवन के आरम्भ काल में महाराज जी अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति थे, किसी के द्वारा कही हुई बात को जो उनको प्रिय नहींथी, को बर्दास्त नहीं करते थे। किन्तु जैसे-जैसे महाराज जी की साधना में निखार आने लगा औरसंगीत के क्षेत्र में ख्याति एवं मान-सम्मान मिलने लगा वैसे-वैसे महाराज के स्वभाव में परिवर्तन आने लगा और शनैः शनैः उनके अन्दर अत्यधिक शालीनता एवं विनम्रता आती गयी। उनका खान-पान शुद्ध शाकाहारी था। उनकी वेशभूषा इतनी साधारण ढंग की थी कि कोई अपरिचित व्यक्ति उनके रहन-सहन को देखकर यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि वे इतने बड़े महापुरुष थे। एक उच्च कोटि का कलाकार होने के बावजूद भी महाराज स्वयं को कभी भी बड़ा नहीं समझे, यह उनके बड़प्पन एवं महानता का परिचायक है। इस सम्बन्ध में श्री कुमार लाल जी का कहना है 'यों तो पिता श्री अपने खान-पान एवं रहन-सहन में इतने साधारण थे कि उन्हें देखकर कोई अपरिचित व्यक्ति यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि वे तबला सम्राट पं० शाम्ता प्रसाद हैं। शरीर पर गमछा लपेटे हुए पिता श्री नयी सड़क तक टहलने चले जाते थे। सड़क के किनारे बसी हुई किसी साधारण चाय की दूकान पर वे बैठकर कभी-कभी चाय पी लिया करते थे। किन्तु अपनी जवानी की उम्र में उन्हें कुछ समय के लिए फैशन करने का शौक हुआ था। उस समय जब वे संगीत समारोहों में जाते थे तब इतने सुन्दर एवं कीमती रेशमी वस्त्र धारण करते थे कि वे किसी राजकुमार से कम नहीं दिखते थे। कढ़ाई किया हुआ रेशमी कुर्ता, जरी का काम किया हुआ शाल एवं सिर पर मखमली टोपी धारण किये हुए पिता जी बहुत खुबसूरत लगते थे। वैसे भी भगवान ने उन्हें स्वयं भी खुबसूरत बनाया था।

(कुमारलाल मिश्र 30-7-1994)

गुदई महाराज जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन एक साधारण नागरिक एवं आदर्श कलाकार थे रूप में बिताया। उनका व्यक्तित्व इतना सरल एवं मिलनसार था कि जब वे कार्यक्रमों में जाते थे तो कार्यक्रम स्थल पर पहुँचते ही उनसे मिलने-जुलने वालों का अपार जन-समूह उमड़ पड़ता था। ऐसे लोगों में अधिकांशतः पत्रकार छायाकार, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के सम्वाददाता एवं कुछ कलाप्रेमी साधारण नागरिक होते थे जो महाराज का आटोग्राफ लेने की इच्छा रखते थे। कार्यक्रम के संयोजक अथवा सुरक्षाकर्मी ऐसे लोगों को जब महाराज जी से मिलने के लिए रोकते थे तब महाराज बोलते थे "अरे भाई ? इन्हें मत रोको, इन्हें मेरे पास तक आने दो। ये तो मेरा परम सौभाग्य है कि मुझ जैसे नाचीज से इतने सारे लोग एक साथ एकत्रित होकर मिलने के लिए आये हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेकों मान-सम्मान पा लेने तथा कला की चरम सीमा पर पहुँच जाने के पश्चात भी महाराज जी के अन्दर अहंकारी भाव छूकर भी नहीं था।

गुदई महाराज जी एक धार्मिक व्यक्ति थे। उनकी हिन्दू धर्म में पूर्ण आस्था थी किन्तु उनके मन में अन्य सभी धर्मों के प्रति आदर एवं सम्मानकी भावना थी। वे माँ काली के अनन्य भक्त थे। उनके घराने में तबला सम्राट पं० प्रताप महाराज जी के समय से ही माँ काली की पूजा करने की प्रथा चली आ रही है। प्रताप महाराज जी के विषय में ऐसा कहा जाता है कि बचपन में अपने निकम्मेपन के लिए अपने घर वालों से प्रताड़ित किये जाने पर वे घर का त्याग करके काली खोह चले गये वहाँ इन्होंने माँ काली की बारह वर्षो तक तपस्या की उनकी घोर-तपस्या से प्रसन्न होकर माँ ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ तबला वादक होने का वरदान दिया जिसके फलस्व-

रूप प्रताप महाराज जी को तबला वादन में अभूतपूर्व सिद्धि प्राप्त हुई। चूंकि महाराज जी के पूर्वजों को माँ काली की कृपा से ही तबला वादन में सिद्धि प्राप्त हुई थी। इसलिए माँ काली की आराधना में महाराज जी का अटूट विश्वास होना सहज ही था। प्रतिदिन प्रातः काल वे काली माँ का दर्शन करने के पश्चात ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। वाराणसी में कबीरचौरा स्थित महाराज जी के पैतृक निवास के समीप कुछ दूर पर माँ काली का एक छोटा सा मन्दिर आज भी विद्यमान है। महाराज अपने सम्पूर्ण जीवन काल में चाहे तेज ठंडक पड़ रही हो चाहे झुलसती हुई धूप हो अथवा मुसलाधार पानी ही क्यों न बरस रहा हो, महाराज प्रतिदिन माँ काली का दर्शन करने नंगे पैर ही जाया करते थे। प्रत्येक मंगलवार को शीतला मन्दिर में वे माँ शीतला का दर्शन करते थे। उनके देहावसान के कुछ दिनों पूर्व की घटना है एक दिन मिलने-जुलने वालों की वजह से अत्यधिक व्यस्तता के कारण महाराज माँ के दर्शन दिन में न कर सके। जब वे अर्धरात्रि में मिलने जुलने वालों से मुक्त हुए तो उस समय घनघोर वर्षा हो रही थी किन्तु उसके बावजूद भी वे वृद्धावस्था की आयु में नंगे पाव रात्रि के अन्धकार में मन्दिर गये। जब वे मन्दिर पहुँचे तो मन्दिर के कपाट बन्द हो चुके थे। पुजारी जी घोर निद्रालीन हो चुके थे। महाराज ने पुजारी जी को जगाया तो वह उठने में आनाकानी किये, बाद में उन्होंने महाराज को मन्दिर की चाभी दे दी, महाराज स्वयं ताला खोलकर मन्दिर में प्रवेश कर माँ के दर्शन किये।

उपर्युक्त चर्चा से महाराज जी के धार्मिक जीवन पर तो प्रकाश पड़ता ही है साथ ही साथ यह भी सिद्ध होता है कि वे अपने पराक्रमी पूर्वजों की भांति ही माँ काली के उपासक थे। इस सम्बन्ध में श्री कुमार लाल जी ने लेखक को बताया "पिताश्री को मेरे घर के पास वाले माँ काली के मन्दिर में ही तबला वादन की महान सिद्धि प्राप्त हुई थी अर्थात माँ काली की कृपा के फलस्वरूप ही पिता श्री सफलता की इस चोटि पर आरूढ़ होने में सफल हुए। उनके मन में माँ काली के प्रति अटूट श्रद्धा थी।

(कुमार लाल मिश्र 30–7–94)

गुदई महाराज का साधना क्षेत्र : तबला के जादूगर पं० शाम्ता प्रसाद मिश्र का साधनागतयोग दान भारतीय संगीत के क्षेत्र में इतना अत्यधिक व्यापक है कि उसका सही सही मूल्यांकन करना और शब्दों के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना हम जैसे छोटे-मोटे कलाकारों अथवा लेखकों के सामर्थ्य की बात नहीं है फिर भी लेखक अपने अल्प ज्ञान के आधार पर महाराज जी के सांगीतिक कार्यों की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा है। महाराज जी के मधुर तबला-वादन का आनन्द श्रोतागण अनेक रूपों में उठाते थे और वस्तुतः आज भी वे उस आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि महाराज जी के अनेकों ही रेकार्ड आज बाजार में उपलब्ध हैं जो सरलता पूर्वक बाजार से खरीदे जा सकते हैं। महाराज जी तबला-वादन की सभी विधाओं (जैसे स्वतन्त्र तबला-वादन, शास्त्रीय गायन, वादन एवं नृत्य के साथ संगत, उप शास्त्रीय गायन जैसे ठुमरी, दादरा, चैती, कजली आदि के साथ संगत, फिल्म संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत के अन्तर्गत प्रयुक्त गायन एवं वादन के साथ संगत तथा नाटकों अथवा चलचित्रों में प्रयुक्त पार्श्व, संगीत के अन्तर्गत तबला के द्वारा, विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के द्वारा भाव-प्रदर्शन जैसे—बादलों की गड़गड़ाहट, रेलगाड़ी की आवाज, घोड़ों के टापों की आवाज आदि में महाराज जी सिद्धहस्त थे।

गुदई महाराज जी एक सफल तबला संगतकार होने के साथ ही साथ एक महान स्वतन्त्र तबला-वादक भी थे। तबले को स्वतन्त्र वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में उन्होंने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उसे भारतीय संगीत जगत कभी भी भुला नहीं सकता

भारतवर्ष के अतिरिक्त विदेशों में भी तबला की जो लोकप्रियता आज बढ़ी है इसका भी श्रेय काफी हद तक महाराज जी को जाता है। हालांकि आधुनिक युग में अनेकों तबला वादक विदेश यात्रा कर रहे है और विदेशों में कई स्थानों पर भारतीय शास्त्रीय संगीत के शिक्षा भी विद्यालयों के माध्यम से दी जा रही है किन्तु महाराज जी जिस समय विदेशों की यात्रा प्रारम्भ किये उस समय यह बहुत बड़ी बात हुआ करती थी। महाराज जी ने अपने जीवन-काल में रूस, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, अफ्रीका इंगलैण्ड, बेलजियम एवं जर्मनी आदि देशों में अपना कार्यक्रम अनेकों बार सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया था।

गुदई महाराज चूंकि बनारस घराने से सम्बन्धित थे। फलस्व रूपस्वतन्त्र तबला-वादन के अवसरों पर वे गुरुओं से प्राप्त बनारस घराने की ही शैली में बनारस के प्रसिद्ध कायदा, टुकड़ा, परन, रेला, गत आदि का प्रयोग करते थे। बोलों एवं घराने की समानता होने पर भी अन्य तबलावादकों की अपेक्षा महाराज का तबला वादन कुछ अनूठा ही था जो निश्चित रूप से श्रोताओं के चित्त को हर्ष से आह्लादित कर देता था।

गुदई महाराज सफल स्वतन्त्र तबला वादक होने के साथ एक कुशल तबला संगतकार भी थे। एक अच्छे गुरु से शिक्षा प्राप्त कर लेना एवं ढेर सारे बोलों को कठस्थ करके कठोर अभ्यास कर लेना तथा उन्हे स्वतन्त्र वादन के समय प्रस्तुत करना तो एक अलग बात है किन्तु भिन्न भिन्न कलाकारों के साथ चाहे वे गायक हो, तन्त्रकार हो अथवा न तर्क हों उनकी इच्छानुसार एवं श्रोताओं की रुचि को ध्यान में रखकर संगत करना एक बहुत बड़ी बात है जो गुदई महाराज जैसे बिरले संगतकारों में ही पायी जाती है।

गुदई महाराज जी प्रयोक्ता एवं श्रोता दोनों की रुचि को ध्यान में रखते हुए उक्त सभी विधाओं में संगत करने में निपुण थे। शास्त्रीय गायन-वादन के अतिरिक्त वे अब शास्त्रीय गायन-वादन, सुगम-संगीत, फिलम-संगीत, तथा लोक-संगीत के साथ भी कुशल संगत करते थे। उन्होंने अनेकों फिल्में जैसे मेरी सूरत तेरी आँखें, झनक-झनक पायल बाजे, किनारा, शोले, पाकीजा, सुनरे प्यासे, जलसाघर आदि में सफलता पूर्वक तबला वादन किया है। इस प्रकार फिलमों के माध्यम से उन्हें और भी लोक-प्रियता प्राप्त हुई।

महाराज जी के तबला संगत की प्रमुख विशेषता यह थी कि वे किसी भी कलाकार के साथ संगत करते समय बंधी हुई चीजों की अपेक्षा उपज की चीजों को अधिक बजाया करते थे। कलाकार के द्वारा प्रयुक्त विभिन्न लय तथा लयकारियों पर आधारित छन्दों के अनुरूप तत्काल सुन्दर बोलों की रचना करके बजाने में वे पारंगत थे। तन्त्र के साथ तबला में सवाल-जवाब एवं लड़न्त-भिड़न्त करने में महा-राज जी का कोई जबाब नहीं था। झाले के साथ जब उनका तबला बजता था तब ऐसा लगता था मानो आनन्द की स्वर गंगा प्रवाहित हो रही हो। उनके हाथ की तैयारी एवं सफाई के साथ-साथ जहाँ एक तरफ जोरदारी थी वहीं दूसरी तरफ मुलायमियत भी इतनी अधिक थी कि कलाकार का संकेत मिलते ही वे अपने तबले की ध्वनि इतनी धीमी कर देते थे कि मानों सितार अथवा सरोद के तार में ही उनके तबले की ध्वनि प्रवेश कर गयी हो। वे रंग-मंच को कुश्ती का अखाड़ा नहीं समझते थे। कला-कार छोटा हो अथवा बड़ा किन्तु उसकी अपेक्षा के अनुसार ही संगत करना, यह उनकी स्वाभाविक विनम्रता का द्योतक है।

कथक नृत्य के साथ तबला बजाने में वे विशेष रूप से सिद्धहस्त थे उन्होंने अनेकों नर्तकियों के साथ संगत की थी एक बार कलकत्ता में एक संगीत समारोह आयोजित था। इस समारोह में महाराज जी को नृत्यांगना सुश्री रोशन कुमारी के साथ संगत

करना था। कार्यक्रम प्रारम्भ होने से पूर्व रोशन कुमारी ने यह चुनौती देकर कहा कि उनके साथ तत्कार के समय गुदई महाराज तो क्या हिन्दुस्तान का कोई भी तबलिया टिककर शुद्ध ना, धि, धिना नहीं बजा सकता है। यह सुनकर गुदई महाराज जी क्रोध से पागल हो उठे और तबला बजाने से पूर्व (अपने सिर पर हाथ रखकर) माँ काली की सौगन्ध खाकर बोले 'आज यदि रोशन कुमारी को परास्त नहीं कर दिया तो मेरा नाम गुदई महाराज नहीं।' उक्त कार्यक्रम में महाराज जी आरम्भ से ही रोशन कुमारी पर हावी रहे और तत्कार के समय द्रुत लय में लगातार लगभग 45 मिनट तक ऐसा 'ना, धी धी ना' एक लय में टिककर बजाया कि रोशन कुमारी जी आश्चर्य चकित रह गयीं जब वे हारकर आगे नहीं नाच सकी तो तिहाई लेकर कार्यक्रम समाप्त कर दीं और महाराज जी से अपनी गलती के लिए क्षमा-याचना कीं। यह दृश्य देखकर श्रोता आश्चर्य चकित हो ठगे से रह गये। इस कार्यक्रम के समय श्री कुमार लाल जी जिन्हें इस घटना के समय पिता जी के पास बैठने का सौभाग्य प्राप्त था उन्होंने ही लेखक को यह संस्मरण सुनाये।

(श्री कुमारलाल मिश्र दि० 20-8 94)

ठीक इसी तरह की घटना गोपीकृष्ण जी के साथ इलाहाबाद में आयोजित एक संगीत सम्मेलन में हुयी थी जबकि स्व० गोपीकृष्ण जी ने महाराज जी को तत्कार के साथ 'ना, धी धी ना' बजाने के लिए चुनौती दिया था। महाराज जी ने वहाँ भी गोपी कृष्ण के साथ चमत्कार पूर्ण ना, धी धी ना बजाकर उन्हें परास्त किया था।

उक्त वर्णित घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि गुदई महाराज जी कथक नृत्य की संगत करने में अप्रतिम रूप से सिद्धहस्त थे। इससे यह भी संकेत मिलता है कि महाराज जी में जहाँ एक तरफ विनम्रता, शालीनता धैर्य एवं सहन शक्ति थी वहीं दूसरी तरफ किसी के द्वारा दी गयी चुनौती को डटकर मुकाबला करने की निर्भीक शक्ति भी उनके अन्दर थी। उनके इस दोहरे व्यक्तित्व का पूर्ण प्रभाव उनके वादन में सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है।

महाराज जी ने अपने जीवन काल में अनेकों ही गायकों तन्त्रकारों एवं नर्तकों के साथ सफलता पूर्वक संगत किया। उसमें से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—

प्रमुख गायक एवं गायिकाओं के नाम	प्रमुख वादक एवं वादिकाओं के नाम	प्रमुख नर्तक एवं नृत्यांगनाओं के नाम
संगीत मार्तण्ड पं० ओम्कारनाथ ठाकुर, स्व० पं० विनायक राव पटवर्धन, स्व०पं०डी०वी० पुलस्कर, गंगूबाई हंगल, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, श्रीमती गिरिजा देवी, स्व० श्रीमती रसूलन बाई, स्व० उ० फैयाज खां, स्व० उ० अमीर खाँ, हीराबाई बडोदकर, पं० भीमसेन जोशी एवं पं० बलवन्त राय भट्ट इत्यादि।	स्व० उस्ताद अलाउद्दीन खां, स्व० उ० हाफिज अली खां, उ० विलायत अली खां, उ० अली अकबर खां, पं० रविशंकर बी०जी० जोग, डा० श्रीमती एन० राजम् एवं डा० आर० पी० शास्त्री इत्यादि।	स्व० श्री शम्भू महाराज, स्व० अच्छन महाराज, स्व० श्री गोपी कृष्ण, पं० विरजू महाराज, सुश्री रोशन कुमारी, डा० श्रीमती सितारा देवी एवं दमयन्ती जोशी इत्यादि।

गुदई महाराज एक उच्च कोटि के कलाकार ही नहीं अपित एक कुशल शिक्षक भी थे। प्राय: यह देखने को बहुत कम ही मिलता है कि जो उच्चकोटि का कलाकार हो यह एक अनुभवी अध्यापक भी हो। महाराज में वे सभी गुण विद्यमान थे जो एक आदर्श शिक्षक में होने चाहिए।

महाराज जी अपने शिष्यों को सिखाते समय अत्यधिक सचेत रहते थे। उनका ध्यान सदैव विद्यार्थियों के बैठने की मुद्रा, वाद्य को धारण करने की विधि, हस्त एवं उगलियों का संचालन तथा बोलो के निकास के तरफ केन्द्रित रहता था। बिद्यार्थी द्वारा किसी प्रकार की भूल अथवा गलती करने पर वे तुरन्त टोक देते थे। और उसे सही कराकर ही आगे बढ़ते थे।

महाराज जी की वंश परम्परा में 'श्री कुमार लाल मिश्र, एक अच्छे तबला वादक के साथ ही साथ कुशल शिक्षक भी हैं जो आजकल आकाशवाणी वाराणसी में प्रथम श्रेणी के तबला संगतकार के पद पर नियुक्त हैं एवं श्री कैलाश नाथ मिश्र अग्रसेन महाविद्यालय वाराणसी में तबला संगतकार के पद पर नियुक्त हैं जो एक कुशल तबला-वादक हैं। उनके तृतीय पुत्र श्री रविशंकर मिश्र सितार बजाते हैं। उनके शेष पुत्रों को संगीत से विशेष लगाव नहीं है।

महाराज जी के सुयोग्य शिष्यों में श्री शशि नायक (आप महाराज जी से तबले की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात जीविकोपार्जन हेतु अमेरिका चले गये और आज भी वही रह रहे हैं), श्री मानिक लाल दास, श्री जे मैसी (आप आजकल आकाशवाणी वाराणसी में प्रथम श्रेणी के तबला संगतकार के पद पर नियुक्त हैं, आप देश के अच्छे तबला वादकों में से एक हैं), श्री सुखमय बनर्जी, श्री पंकज मुखर्जी, श्री अशोक मुखर्जी, श्री पार्थ सारथी मुखर्जी एवं स्व० श्री मानिक राव पोपटकर जी के नाम प्रमुख हैं। श्री मानिक राव पोपटकर जी महाराज जी से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात लन्दन चले गये वहाँ उन्होंने महाराज जी के नाम से एक विद्यालय भी खोला, उनके प्रयत्न से महाराज जी की वादन शैली का लन्दन में खूब प्रचार-प्रसार हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि गुदई महाराज जी एक सफल तबला-वादक ही नहीं अपितु एक अनुभवी एवं योग्य शिक्षक भी थे। उनके कुशल शिक्षक होने का सबसे बड़ा प्रमाण उनके शिष्यों की विशाल संख्या है जो देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी महाराज जी के स्वस्थ वादन-शैली की परम्परा को आज भी जीवित रखे हुए हैं।

काशी के रामकटोरा नामक मुहल्ले में भूमि क्रय करके उन्होंने एक बड़ा आलीशान इमारत बनवाया, जिसमें उन्होंने एक विशाल कक्ष का निर्माण संगीत समारोहों आदि जैसे उत्सवों के लिए करवाया है। इस कक्ष का नाम उन्होंने सरस्वती कक्ष रखा है।

महाराज जी को अपने जीवन काल में अनेकों विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत तथा विभिन्न उपाधियों से विभुषित किया गया। महाराज जी ने उपलब्धियों का जो कीर्तिमान स्थापित किया, उन सभी के विषय में यहाँ लिखना सम्भव नहीं है, फिर भी संक्षेप में लेखक उनकी सांगीतिक उपलब्धियों की एक झलक प्रस्तुत कर रहा है।

महाराज जी ने सुर सिंगार संसद द्वारा आयोजित स्वामी हरिदास संगीत सम्मेलन में सन् १९५२ में भाग लिया जो देश का एक प्रतिष्ठित समारोह है इसका आयोजन प्रति वर्ष दिसम्बर माह में बम्बई में किया जाता है। उनको ललित कला एकादमी कानपुर द्वारा सन् 1966 में 'ताल मार्तण्ड' की उपाधि से सम्मानित किया गया। प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद द्वारा सन् 1967 में 'ताल-शिरोमणि, की उपाधि से सम्मानित किया गया। कलकत्ता में आयोजित "सूरदास संगीत सम्मेलन" सन् 1970 में "तबला के जादूगर" कहकर सम्बोधित किया गया। सन् 1970 में ही रेलवे इन्स्टी-

च्यूट इलाहाबाद में आयोजित एक संगीत समारोह में "तबला सम्राट" की उपाधि प्रदान की गयी। सन् 1972 में भारत के राष्ट्रपति द्वारा "पद्मश्री" की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1973 में बेल्जियम के राजदूत द्वारा 'मेरिट अवार्ड' प्रदान किया गया। सन् 1974 में उन्हें सुर सिंगार संसद बम्बई द्वारा 'तालविलास' की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1974 में ही उन्हें आकाशवाणी नई दिल्ली के सेन्ट्रल आडीशन बोर्ड में सदस्यता प्रदान करके सम्मानित किया गया। इन सबके अतिरिक्त विश्व उन्नयन संसद द्वारा डा० ऑफ फेलोशिप तथा 'उस्ताद हाफिज अली खां पुरस्कार' भी प्रदान किया गया। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल एवं शिक्षा मन्त्री के द्वारा भी उन्हें विशेष सम्मान प्रदान किया गया। सन् 1990 में उन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया जो बिरले कलाकारों को ही प्राप्त होता है। इसप्रकार हम देखते हैं कि महाराज जी ने अपने जीवनकाल में अत्यधिक मान-सम्मान एवं ख्याति अर्जित किया, जिसका जीता-जागता उदाहरण उनको समय-समय पर दी जाने वाली उपाधियाँ एवं पुरस्कार हैं।

गुदई महाराज जी के वादन शैली को आशीर्वादी शैली के नाम से जाना जाता है। चूँकि उनके घराने में तबला वादन के क्षेत्र में विशेष सिद्धि एवं ख्याति सर्वप्रथम तबला सम्राट पं० प्रताप महाराज को मां काली के आशीर्वाद से प्राप्त हुई थी और उसी समय गुदई महाराज जी के घराने में एक नयी शैली का जन्म हुआ जिसे आगे चलकर "आशीर्वादी शैली" के नाम से जाना जाने लगा। यह वादन शैली बनारस घराने के अन्य तबला वादकों की वादन शैली से सर्वथा भिन्न होने पर भी बनारस घराने की वादन शैली से पृथक नहीं है क्यों कि इस शैली में बनारस घराने के सभी नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है। जैसे खुले बोलों का प्रयोग, छन्द, परन, गत, फरद आदि का प्रयोग लव, थाप एवं स्याही की सहायता से बजने वाले बोलों का प्रयोग तथा तबला पर बजाये जाने वाले वर्णों में धिनगिन, कड़ान, धड़ान, गदिगन, घेरे एवं धिर-धिर आदि की प्रधानता।

महाराज जी की वादन शैली की विशेषता के विषय में मैंने जब श्री कुमार लाल जी से जिज्ञासावश यह पूछा कि बनारस घराने का होने पर भी गुदई महाराज जी की वादन शैली में एक अपनापन था। आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं? तो श्री कुमार लाल जी न बताया, सबसे पहले तो यह समझ लेना चाहिए कि मेरे घराने का तबला बनारस घराने के अन्य तबलावादकों से सर्वथा भिन्न है। मेरा ऐसा कहने का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मेरे घराने का तबला बनारस घराने से पृथक है। हमारे घराने की यह शैलीगत विशेषता, जो कि बनारस के अन्य तबलावादकों में नहीं पायी जाती है, हमारे परदादा के पिता पं० प्रताप महाराज जी को तबला वादन की विशेष सिद्धि मां काली के आशीर्वाद से प्राप्त हुई थी इसलिए उनके द्वारा अपनायी गयी शैली को हमारे घराने में 'आशीर्वाद शैली' कहा जाता है, वादन शैली की यह विशेषता पं० प्रताप महाराज जी से मेरे परदादा पं० जगन्नाथ महाराज जी और उनसे मेरे दादा पं० वाचा महाराज तथा वाचा महाराज जी से मेरे पूज्य पिता पं गुदई महाराज जी ने प्राप्त की और पिता जी के सौजन्य से मुझ जैसे नाचीज को प्राप्त हुई। हमारे घराने के बोलों को बजाने का एक विशेष ढंग है जो अन्य तबला वादकों की शैली से भिन्न है। यों तो बजाने के लिए जिन रचनाओं का प्रयोग अन्य लोग करते हैं। वही बनारस घराने की रचनाएँ हम लोग भी बजाते हैं। लेकिन बोलों के वजन 'दाहिने-बायें बोलों में सामञ्जस्य तथा बोलों के निकास का ढंग अन्य तबला वादकों से भिन्न है। यह अत्यन्त ही मधुर शैली है जिसके अन्तर्गत बोलों को उसकी

पूरी मिठास रस-भाव को ध्यान में रखते हुए सही वजन से जैसे किस बोल को धीरे या मुलायमियत से बजाना है, किस बोल को जोरदार ढंग से बजाना है, किस बोल को बजाते समय डग्गे का प्रयोग अधिक करना है अथवा खुले रूप में बजाना है, किस बोल के साथ डग्गे का प्रयोग हल्के हाथ से करना है इत्यादि बजाया जाता है। इसी शैलीगत भिन्नता के कारण ही बनारस घराने के होने पर भी पिता जी की वादन शैली में एक अपनापन था। वास्तव में इस शैलीगत भिन्नता को समझाने के लिए कहने की अपेक्षा करके दिखाने का अवसर यदि मुझे इस समय मिले तो आप आसानी से समझ जायेंगे क्योंकि यह प्रयोग का विषय है। (श्री कुमार लाल मिश्र, 20-8-94)

इस प्रकार कुमार जी के कथन से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि गुदई महाराज जी की वादन-शैली बनारस के अन्य तबला वादकों से सर्वथा भिन्न थी। यह अत्यन्त ही आकर्षक प्रभावोत्पादक एवं मधुर शैली थी। उन्होंने तबला में जो आवाज (Sound) का काम किया वह अपने आप में अनूठा था। उनके तबले की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसके लव-थाप से उत्पन्न होने वाली सुरीली एवं मधुर ध्वनि कभी टूटने या कटने नहीं पाती थी। यह विशेषता बिरले कलाकारों में ही पायी जाती है। इस सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हुए डा० आर० पी० शास्त्री जी ने बताया "गुदई महाराज जी ने अपने तबले में जो आवाज (Sound) का काम किया था वह अपने आप में असाधारण था। जो आज तक किसी अन्य कलाकार ने नहीं किया तबला में लय एवं लव ये दो चीजे होती हैं। इन दोनों में से लय का काम तो अपनी-अपनी क्षमता के आधार पर यथासामर्थ्य प्रायः सभी तबला वादक करते हैं किन्तु लव का काम जो गुदई महाराज ने किया वह अपने आप में अनोखा था जिस प्रकार दीपक की लव से चारों तरफ प्रकाश-पुंज फैलता है। उसी प्रकार गुदई महाराज जी के तबला की लव से ऐसी ध्वनि निकलती थी जो दीपक की लव से निकलने वाले प्रकाशपुंज की ही भांति चारों तरफ वातावरण में छा जाती थी जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। (डा० आर० पी० शास्त्री 20-7-94)।

भारतीय संगीतजगत को गुदई महाराज जी को देन :—महाराज जी ने माँ काली की असीम अनुकम्पा एवं अपने अथक परिश्रम तथा दूर-दर्शिता से केवल तबला वादन में आश्चर्यजनक सिद्धियाँ ही नहीं प्राप्त कीं बल्कि तबला-वादन में गमक, मीड़ तथा गूँज से युक्त विशेष प्रकार की मधुर ध्वनि निकालने के लिए नयी तकनीक को भी विकसित किया। उ० सिद्धार खां के काल से ही तबला वादन में डग्गा अथवा बाँया तबला बजाने की एक जैसी परम्परा तबले के प्रचलित सभी घरानों में पायी जाती है किन्तु शाम्ता प्रसाद जी ऐसे पहले तबला वादक थे जो डग्गा को उल्टा करके बजाते थे। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए दिल्ली दूरदर्शन से प्रसारित Great Masters नामक कार्यक्रम में कुछ वर्षों पूर्व उन्होंने स्वयं कहा था "जब डग्गे को सीधा रखकर हम बजाते है तो यह देखते है कि डग्गा के अग्रभाग में जहाँ उगलियों से प्रहार करके बजाया जाता है वहाँ डग्गे में लगी हुई स्याही एवं डग्गे के किनारे पर लगी हुई चर्म-पट्टिका के बीच बहुत कम जगह रहती है। जिसके कारण गमक, मीड़ एवं गूँज का अच्छा काम डग्गे में नहीं हो पाता है किन्तु यदि डग्गे को उल्टा रखकर बजाया जाए तो गमक, मीड़, गूंज इत्यादि क्रियायें सरलता पूर्वक की जा सकती है क्योंकि तब डग्गा उल्टा रखने पर स्याही एवं किनारे लगी हुई चर्म पट्टिका अथवा चाटी के बीच में अधिक जगह मिल जाती है और उस पर्याप्त जगह में उगलियों एवं हथेली की विभिन्न क्रियाओं द्वारा आसानी से गमक, मीड़ तथा गूँज का अच्छा काम किया जा सकता है।

महाराज जी ने अपने इस नये प्रयोग के द्वारा डग्गा में आवाज का इतना अच्छा काम किया कि समस्त संगीत जगत में तहलका मच गया और आगे चलकर बहुत से तबला-वादकों ने इस तकनीक को अपनाया। इसके अतिरिक्त समूचे तबले में महाराज ने आवाज निकालने की जिस शैली को विकसित किया वह अपने आप में अभूतपूर्व होने के साथ ही साथ आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी अनुकरणीय है। संगीत जगत को महाराज जी की यह एक अपूर्व देन है।

गुदई महाराज जी के जीवन का अन्तिम अध्याय :—सन् 1994 में पूना में (23-5-94 से 29-5-94) तक एक सप्त दिवसीय संगीत कार्यशाला (Workshop) का आयोजन किया गया जिसमें देश के मूर्धन्य संगीत-विद्वानों ने भाग लिया। इस कार्यशाला के मुख्य संयोजक पं० भीमसेन जोशी जी थे। इस कार्यशाला में तबला पर सप्रयोग व्याख्यान (Lecture-demonstration) देने के लिए महाराज जी को आमन्त्रित किया गया था। महाराज जी ने लगातार 7 दिनों तक कार्यशाला में तबला वादन पर सप्रयोग व्याख्यान दिया। विद्वानों ने उनकी व्याख्यानमाला की मुक्त-कण्ठ से प्रसंशा की। अन्तिम दिन 25 मई को महाराज जी का कार्यशाला में विशेष सम्मान किया गया। पं० भीमसेन जोशी ने अपने करकमलों से महाराज जी को माल्यार्पण किया। 30 मई को पुणे में महाराज जी का एक अन्य कार्यक्रम था। उस दिन उन्होंने लगातार 75 मिनट तक चमत्कारिक ढंग से स्वतन्त्र-वादन प्रस्तुत किया। हालांकि तबले पर 75 मिनट तक स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करना कोई बड़ी बात नहीं है किन्तु महाराज जी की वृद्धावस्था को ध्यान में रखकर यदि विचार किया जाए तो वह बहुत बड़ी बात थी।

कहा गया है "बुझने से पूर्व दीपक की लौ तेज हो जाती है" महाराज जी का इस दिन का स्वतन्त्र तबला-वादन निश्चित रूप से चमत्कारिक था। 30 मई के बाद एक दिन विश्राम करके महाराज जी पहली जून को वाराणसी लौटने वाले थे किन्तु 31 मई अगले दिन पुणे में ही अचानक हृदय गति रूक जाने के कारण सायंकाल 5 बजे उनका स्वर्गवास हो गया।

महाराज जी के निधन के पश्चात् सम्पूर्ण संगीत जगत ही नहीं अपितु समूचा राष्ट्र शोक में डुब गया। देश-विदेश से तमाम संगीत प्रेमियों ने महाराज जी के शोकाकुल परिवार को शोक संवेदनाएँ भेजी। भारतीय समाचार पत्रों में लगभग 15 दिन तक लगातार महाराज जी के महान् व्यक्तित्व उनकी सांगीतिक उपलब्धियों एवं उनकी संगीत-साधना के विषय में लेख एवं चर्चाएँ प्रकाशित होती रहीं। महाराज जी की मृत्यु का समाचार सुनते ही उनके श्रद्धालु उनके अन्तिम संस्कार में भाग लेने के लिए इग्लैण्ड एवं अमेरिका जैसे दूर-दराज के देशों से भी लोग वाराणसी चले आये। महाराज जी के देहावसान का समाचार सुनते ही उत्तर-प्रदेश के मुख्यमन्त्री जी अपना समस्त कार्यक्रम स्थगित करके वाराणसी आये एवं कबीरचौरा स्थित महाराज जी के पैतृक निवास पर पहुँचे। उनके शोक-संतप्त परिवार के सदस्यों से मिले, उन्हें सान्त्वना दिये एवं एक लाख रुपये की नकद धनराशि अनुग्रह स्वरूप प्रदान की।

महाराज जी को अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि देते हुए सुप्रसिद्ध वायलिन वादिका पद्मश्री डा० श्रीमती एन० राजम जी ने कहा "महान कलाकार पं० शान्ता प्रसाद जी माँ काली के अनन्य उपासक थे और अपनी कठोर साधना द्वारा उन्होंने तबले पर आश्चर्य जनक सिद्धियां प्राप्त की थीं वह निःसंदेह माँ के ही असीम कृपा के कारण थी। मुझे सौभाग्यवश उनके साथ बजाने के कई अवसर प्राप्त हुए। उनकी तैयारी, सफाई एवं भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण से श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर झूम उठते थे। अन्तिम क्षण तक संगीत की निरन्तर सेवा करते हुए उन्होंने एक सम्पूर्ण जीवन बिताया।

हमारे बीच से उनका अचानक चला जाना भारतीय संगीत के लिए एक अपूरणीय क्षति है।"

(डा० श्रीमती एन० राजम्, 1 सितम्बर 94)

महाराज जी के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए सुप्रसिद्ध बेला-वादक डा० आर० पी० शास्त्री ने कहा, "गुदई महाराज जी एक उच्च कोटि के तबला-वादक थे। उन्होंने अपने कठोर परिश्रम से जो तबले की अभूतपूर्व साधना की वह सराहनीय ही नहीं अपितु आश्चर्यजनक भी है। उन्होंने तबला-वादन में जो आवाज का विशेष काम किया वह श्रोताओं को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। मेरा यह परम सौभाग्य है कि मुझे ऐसे महान् कलाकार को साक्षात् सुनने का ही नहीं अपितु उनके साथ कार्यक्रम प्रस्तुत करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके निधन से संगीत जगत् को गहरा आघात पहुँचा है। परम पिता परमेश्वर उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें। यही प्रार्थना करता हूँ।" (डा० आर० पी० शास्त्री 22 जुलाई 94)

महाराज जी को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए सुविख्यात गायक 'पद्मश्री' पं० बलवन्त राय भट्ट 'भावरङ्ग' भइया जी ने कहा—"गुदई महाराज जी बड़े उत्साही व्यक्ति थे। वे स्वभाव से बड़े ही सरल एवं परिश्रमी थे। उनसे मेरी पहली मुलाकात सन् 1944-45 के आस-पास कलकत्ता में कार्तिकेय-जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित एक संगीत समारोह में हुई थी। इस कार्यक्रम का आयोजन उस समय प्रति वर्ष श्री दामोदर दास खन्ना (लाला बाबू) जी करवाते थे। उन्होंने मेरे पूज्य गुरुदेव पं० ओम्कारनाथ ठाकुर जी को गाने के लिए आमन्त्रित किया था। पण्डित जी के साथ गाने के लिए मैं भी वहाँ गया था। उन दिनों ऐसी परम्परा थी कि बड़े गुरुओं के कार्यक्रम से पूर्व उनके शिष्यों को भी गाने बजाने का अवसर दिया जाता था। अतः पण्डित जी के कार्यक्रम से पहले मेरा गायन होना सुनिश्चित हुआ। गुदई महाराज जी ने मेरे उस कार्यक्रम में प्रभाववाली संगत की और मेरे कार्यक्रम को जमा दिया था। मेरी उनसे दूसरी मुलाकात सन् 1945–50 के बीच पंजाब में आयोजित एक संगीत सभा में हुई थी। पंजाब में काफी समय पूर्व ऐसी प्रथा थी कि गायकों एवं वादकों के साथ संगत करने के लिए दस-बारह तबलियों को एक साथ बैठाया था। जब मैं अमृतसर गया था तब यह संख्या बारह से घटकर दो हो गयी थी। अस्तु पण्डित जी के साथ संगत करने के लिए वहाँ हबीबुद्दीन खाँ एवं गुदई महाराज को एक साथ आमन्त्रित किया गया था। उस समय एक मजेदार घटना यह घटी कि दोनों तबला-वादक अपना-अपना तबला सुर में मिलाने लगे। पहले हबीबुद्दीन खाँ ने अपना तबला मिला कर जोरदार थाप लगाया किन्तु उनका तबला अभी अच्छी तरह से मिल नहीं पाया था। इतने में गुदई महाराज ने अपने तबले पर एक जोरदार थाप मारी। उनकी सुरीली थाप सुनते ही श्रोताओं ने जोरदार तालियाँ बजायी। उस कार्यक्रम में पण्डित जी के साथ मैं भी गा रहा था। कार्यक्रम समाप्त होने पर महाराज मेरे पास आये और बोले, 'वाह भाई बलवन्त राय जी! क्या बात है? आज तो आप ने कमाल कर दिया। उनकी बात सुनकर मैं बोला, महाराज! आप का भी कोई जबाब नहीं। आपने तो आरम्भ में ही केवल एक थाप लगाकर सारी वाह-वाही लुट ली। मेरी बात सुन कर बोले, "ये सब काली माई की कृपा है।" इसके अतिरिक्त उनके साथ कार्यक्रम प्रस्तुत करने के मुझे जीवन में अनेकों ही सुअसवर प्राप्त हुए। वे अपने मधुर तबला-वादन से कार्यक्रम में चार-चाँद लगा देते थे और श्रोता आत्मविभोर होकर झूमने लगते थे। तबला-वादन के अतिरिक्त गुदई महाराज जी को गाना गाने का भी शौक था यह बात मुझे मेरे मित्र ठाकुर धराचन्द जी ने बतायी थी। पंजाब के कार्यक्रम के दौरान गुदई महाराज अमृतसर में ठाकुर धरा चन्द जी के ही घर पर ठहरे थें। उस समय उन्होंने ठाकुर साहब

को एक आकर्षक ठुमरी गा कर सुनायी थी। ऐसा ठाकुर धरा चन्द जो ने मुझसे एक बार कहा था। गुदई महाराज जी ने तबला के क्षेत्र में आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त किया। उसके पीछे अनोखे लाल जी का भी हाथ था। उनके निधन के कुछ दिनों पूर्व आकाशवाली वाराणसी से मेरे बेटे राहुल के साथ उनका एक, रेडियो साक्षात्कार प्रसारित हुआ था। जिसके अन्तर्गत उन्होंने स्वयं कहा था, "तबला-वादन के क्षेत्र में मैंने जो कुछ भी किया है वह अनोखे लाल जी को देखकर ही किया है। कोई इस बात को कहे या न कहे किन्तु मैं इसे दिल से स्वीकार करता हूँ कि मैं अनोखेलाल जी को देखकर ही आगे बढ़ा"। गुदई महाराज जी एक बहुत ही परिश्रमी एवं संगीत के प्रति समर्पित व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन भर एक योगी की भाँति संगीत की सेवा की। उनकी मृत्यु से भारतीय संगीत-जगत में एक महान् तबला-वादक को खो दिया है। जिसका अभाव हमें सदैव खटकता रहेगा।" (पद्म श्री पं० बलवन्त राय भट्ट 28-8-94)

गुदई महाराज जी के अचानक निधन से सुप्रसिद्ध गायिका श्रीमती गिरिजा देवी जी को गहरा आघात पहुँचा। महाराज जी के विषय में विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा—"पं० शान्ता प्रसाद मिश्र जी एक उच्चकोटि के तबला-वादक ही नहीं अपितु सच्चे अर्थों में संगीत के प्रति पूर्ण-रूपेण समर्पित महापुरुष थे। अपने कठोर परिश्रम एवं साधना से उन्होंने तबला-वादन में ऐसी चमत्कारिक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं जो अपने आप में आश्चर्य जनक हीं नहीं अपितु असाधारण भी थीं। ऐसे महान् तबला-वादक धरती पर बहुत कम ही अवतरित होते हैं। सौभाग्यवश मुझे अपने जीवन में अनेकों बार उनके साथ कार्यक्रम करने के अवसर प्राप्त हुए। उनके साथ मेरा अन्तिम कार्यक्रम वाराणसी में आयोजित गंगा-महोत्सव में 7 मई 1994 को हुआ था। उन्होंने मेरे गायन के साथ बड़ी प्रभावपूर्ण संगत की थी जिसकी सराहना भी श्रोताओं ने मुक्त कन्ठ से की। उनके भावपूर्ण तबला-संगत से कार्यक्रम में चार-चाँद लग जाता था और श्रोता सुनकर आत्मविभोर हो उठते थे। उनके अचानक निधन से मुझे ही नहीं अपितु समस्त भारतीय संगीत जगत को गहरा आघात पहुँचा है। मैं दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करती हूँ।

(गिरिजा देवी 11-9-94)

●

आंकिक संकेतों के बजाय साधारण भाषा को समझनेवाले कम्प्यूटरों के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग में लायी जाने वाली भाषा गणितीय विश्लेषणों की कसौटी पर खरी उतरे। इस सन्दर्भ में अनुसन्धान करने पर वैज्ञानिकों ने पाया की सभी भाषाओं के व्याकरणों में केवल पाणिनिका संस्कृत व्याकरण ही ऐसा है जो यह शर्त पूरी करने में सक्षम है। अन्य भाषाओं के व्याकरण जहाँ अव्यवस्थित नियमों से भरे पड़े है, संस्कृत व्याकरण वैज्ञानिक और परमशुद्ध है। प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी एल० ब्लू फील्ड ने इसे मानव प्रतिभा का महानतम स्मारक कहा है। पाणिनि के व्याकरण की संरचना वस्तुतः किसी प्रारूपिक कम्प्यूटर प्रोग्राम से बिल्कुल मिलती-जुलती है।

सौजन्य—दैनिक 'आज' 11 दिसम्बर 1986

Pandit Samta Prasad Mishra
'Gudai Maharaj'
The Great Magician of Tabla

(Jai Prakash Singh 'Surmani')

Editor's Summary

There have been a number of Tabla Players in Indian classical music who have left an indeliable impression of their art upon the mind of audience. Among these artists of Tabla, a few are so great that they have become immortal forever by the virtue of their great art and as such their names have been written with the golden letters in the pages of the history of Indian classical music.

Pandit Smata Prasad Mishra (Gudai Maharaj), a man of attracting personality, an exceptionally brilliant scholar of Tabla, an ideal teacher, a great performer both as an accompanist and soloist, is one of these prominent figures.

Short Introduction

Born in a traditional family of musicians on 20th July, 1920 at Kabir Chowra in Varanasi city of Uttar Pradesh (India) Gudai Mahraj started initial training of Tabla in his early childhood under able guidance of his father, Pandit Bacha Mishra who was a renouned Tabla Player of his time. In his early childgood, Shamta Prasad used to put his small fingers on Tabla unconsciously in such a manner as if some Godana Maker puts the needles on hands of a person for writing something. Looking the actions of his fingers on Tabla like a Godana Maker, his father started to call him with the lovely name of Godai and latter on, this small child became famous as a great Tabla Player in the field of music with the name of Gudai Maharaj.

When he was of eight years, his father passed away and due to which there came an obstacle in his studies of Tabla. Due to untimely death of his father, the economic condition of his family became very bad as Tabla was the only profession of his father. However, his mother, Mrs. Bhagmani Devi did not loose her courage and worked hard in order to earn the living of her small family.

After the death of his father, Gudai Maharaj was handed over by his mother to Pandit Bikkoo Maharaj for his further training of Tabla. Pandit Bikkoo Maharaj was a renounded Tabla Player as well as ani deal teacher of Tabla of Banaras school.

Gudai Maharaj received higher training of Tabla from his worshipped Guru Pandit Bikkoo Maharaj and according to his successful direction he practised hard, day and night and thus reserved a permanant place for himself among the best Tabla Players of the country.

He never joined any school for the purpose of his studies but he had acquired a good knowledge of all the general subjects. He had also a good knowledge of astrology. He could only read and write letters in Hindi language as stated by his eldest son Mr. Kumar Lal Mishra.

Gudai Maharaj was a man of hard working nature. He was fully devoted to music. He used to go to Dalmandi for playing Tabla in order to earn his living. After returning back to his home in the evening, he always started his practice in the begining hours of the night and it mostly happenled that he finishedit when the raises of the schorching sun touched his forehead after sun-rise in the morning.

In the begining, the people were not acquainted with his great art of Tabla. When he was of eighteen years, a big music conference had been organised at Allahabad in which all the artists of national level participated. Gudai Maharaj was also fortunate enough to get a chance to participate in this conference as an artist. He accompanied on Tabla with the Sarod recital of Ustad Allauddin Khan Sahab and the programe was so successful that all the audience including the higher dignitaries of indian classical music present in the auditorium, became surprised with the miraculous Tabla accompaniment provided by Gudai Maharaj Latter on, on the demand of audience he had also been given an offer for h's solo recital. He became very popular through this music conference and got a respected place among the Tabla Players of the country.

In 1954, the then Prime Minister of India, Pandit J. L. Nehru, sent and Indian deligation of musicians for the first time to Russia and Gudai Maharaj was also a member of this deligation. Maharaj ji presented an attractive item of Tabla solo in Russia and the programme was so powerful in itself that a deligation of Russian scientists became astonished looking the fingers of Maharaj ji moving quickly on Tabla After returning from Russian, Maharaj ji visited a large number of foreign countries. He presented his successful Tabla in Afganisthan, Iran, Iraq, South Africa, Germany, London etc.

He was married with Tara Devi in 1940 but after giving birth to one son (Sri Kumar Lal) and one daughter, his wife fell ill and died in January, 1946. Thereafter he was again married with Sitangani Devi in 19 0 who is still alive. Gudai Maharaj had five sons and five daughters.

Gudai Maharaj always believed in "Simple Living and high thinking." He

was not fond of wearing costly fancy dresses. His diet was purely vegetarian. His living standard was so simple that any stranger person could not judge that he was Gudai Maharaj, the noted Tabla Player of the country. He was a religious person By religion he was Hindu but he had a soft corner in his heart for other religions too. He had an unflinched faith and worshipped Maan Kali.

His services to Music

Gudai Maharaj served the indian music through out his life both as soloist and an accompanist in accompanying with classical vocal, classical instrumental music and dance etc. Besides this, he was also a great master of Tabla to provide successful accompaniment with Film Music and folk music. He played on Tabla in a large number of Films like Jhanak Jhanak Payal baaje, Kinara, Pakija Shole, Jalsa Ghar etc. Which gave a wide popularity to Maharaj ji among the lovers of Film-music He accompanied with a number of renowned artists of his time.

Amongst them are the vocalists Like Pandit Omkkar Nath Thakur, V. R. Patvardhan, D. V. Puluskar, Gangu Bai Hangal, Siddheshwari Devi, Girija Devi, Rasulan Bai Hira Bai Barodkar, Bhimsen Joshi etc; the intrtrumentalists Like Ustad Allauddin Khan, Ustad Hafij Ali Khan, Ustad Bilayat Ali Khan, Ustad Ali Akbar Khan, Pandit Ravi Shankar, Pandit V. G. Jog, Dr. N. Rajam, Dr. R. P. Shastri etc. and the dancers like Shambhu Maharaj, Achchan Maharaj, Birju Maharaj, Roushan Kumari, Sitara Devi, Gopi Krishna, Damyanti Joshi etc.

Gudai Maharaj as an established teacher of Tabla possessed all those good qualities which an ideal teacher should have in himself. While teaching his students he always concentrated his mind towards finger technique, technique of handling the instrument in a proper way, clarity in producing the various bolas of Tabla, physical posture of the body etc, Some names of his good students, who are now the reputed Tabla Players of the country, are S/Sri Kumar Lal Mishra, Kailash Nath Mishra, Sashi Nayak, Manik Rao Das, J. Maisi, Sukhmay Banarjee, Pankaj Mukherjee, Parthsarthi Mukherjee, Ashok Mukherjee and Manik Rao Popatkar etc. Some of the above students of Maharaj are exceptionally brilliant scholars of Tabla such as – Sri Kumar Lal Mishra, J. Maisi, Parthsarthi Mukherjee etc.

The Contribution of Gudai Maharaj to Indian Classical Music :

Gudai Maharaj belonged to the Banaras School of Tabla He possessed all the qualities of Tabla which are generally found in the Tabla Player of Banaras School. Maharaj ji developed in his Tabla a special kind of sound qual ty in his Tabla which is not found in the other artists of Banaras school and only due to this special quality of sound, his style of

presentation of bolas on Tabla is totally different from other artists of Banaras school. This matter of sound quality is totally related with practical aspect of Tabla and hence it can only be clarified by lecture demonstration. He also developed a new technique of playing on the Dagga (Left part of the Tabla) which was latter on, adopted by the maximum artists of the country. In short, it can be said that developement of a special kind of sound quality in Tabla and technique of playing on Dagga are the ma n contribution of Gudai Maharal to Indian Classical Music.

Awards and honours conferred upon Pt. Gudai Maharaj

The awards and honours which have been time to time conferred upon Pt. Gudai Maharaj are a record in themselves and perhaps no Tabla Player has been fortunate enough so far to receive such a large number of awards and titles in his life.

He was honoured with the title of "Tal Martand" by Lalit Kala Academy Kanpur in 1966 and also honoured with the title of "Tal Shiromani" by prayag Sangeet Samiti Allahabad in 1967. He was awarded with the prestigious title of "Tabla Samrat" in 1970 and also honoured by the prestigious title of 'Padm-Shree" in 1972. and was honoured with "Padma Bhooshan"in 1990. by the President of India Besides, he received a large number of awards which can not be described here.

Gudai Maharaj had been invited to attend a music conference organised by Pandit Bhimsen Joshi at Pune in May, 1994 in which Maharaj ji had been askea to give a lecture demonstration on tabla; he did this job brilliantly and in the last day of conference he was honoured by Pandit Bhimsen Joshi.

He was to return Varanasi on 1st June, 1994 but before returning to Varanasi, he died in Pune on 31st may, 1994 followed by a serious heart attack.

Thus, we find that in spite of a number of unfavourable Circumstances in his life, he practised on Tabla whole heartedly and reached the top height of success. He is undoubtedly a source of inspiration for the artists of new generation.

□

भारतीय संगीत में नवीन प्रयोग

—प्रो० इन्द्राणी चक्रवर्ती

मानव मन प्रयोगवादी है। अन्य प्राणियों की तुलना में उसकी विशेषता यह है कि वह एकरसता पसन्द नहीं करता। प्रकृति ने जो सम्भार उसे दिया है, अन्तःस्थल की गहराइयों में पहुँच कर वह उस पर विजय पाना चाहता है और इस प्रयास ने अधिकांशतः उसे विजयी बनाया भी है।

प्रयोगवादी मानव ने जैसे-जैसे जीवन के हर पहलुओं को जाना वैसे-वैसे उसने संगीत की हर विधाओं का भी गहन अध्ययन व चिन्तन-मनन कर नवीन क्षेत्रों व शैलियों को ढूँढ निकाला और निरन्तर इस कार्य में रत रहा। यही कारण है कि साम से गान्धर्व, गान्धर्व से गान, गान से मार्ग, मार्ग से देशी और विकास व परिवर्तन की सीढ़ियों को पार करता हुआ आज का शास्त्रीय संगीत (हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक) संगीत के सर्वोच्च शिखर की ओर बढ़ता जा रहा है। इन मार्गों को तय करने में उसे सैकड़ों वर्षों के निरन्तर परिश्रम, नित्य नूतन प्रयोग परीक्षण तथा विकसित बुद्धि की पूँजी लगानी पड़ी है।

शास्त्रीय संगीत में नये प्रयोगों पर विचार करने से पूर्व हमें जान लेना उचित होगा कि शास्त्र तथा संगीत क्या है। जो 'शैली' नियमबद्धता तथा लक्षणों से युक्त होकर परम्परानुसार अध्ययन व मनन किया जाय, वह शास्त्र का रूप पाती है। इसी प्रकार जो सम्यक् रूप से गाया जाय वह संगीत है। यहाँ गान के अन्तर्गत वादन व नृत्य को भी समाविष्ट कर लेना चाहिए क्योंकि संगीत की गीत-वाद्य व नृत्य के समुच्चय के रूप में शार्ङ्गदेव ने व्याख्या की है। परन्तु भरत ने संगीत के स्थान पर 'गान्धर्व' शब्द का प्रयोग किया जिसमें केवल गीत व वाद्य का ही समावेश किया गया है। नृत्य, भरत की दृष्टि में एक अलग किन्तु पूर्ण विद्या है जिसका गान व वादन आहार्य है।

भरत से शार्ङ्गदेव तथा शार्ङ्गदेव से अहोबल तक किसी भी ग्रन्थकार ने अभिजात संगीत को 'शास्त्रीय संगीत' नहीं कहा है। तत्कालीन संगीत की शास्त्रबद्धता स्वीकार करते हुए उन गान-वादन की शैलियों या पद्धतियों का शास्त्र के अन्तर्गत विवेचन अवश्य किया है।

संगीत के इतिहास की ओर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होगा कि जैसे-जैसे सामान्य जीवन में नित्य नये प्रयोग होते रहे हैं, वैसे ही संगीत को लेकर विभिन्न प्रयोग, चिन्तन व मनन के नये आयाम भी भी खुले हैं। सिद्धान्त के साथ यदि हम प्रयोग की ओर ध्यान दें तो बात और भी स्पष्ट होगी।

सिद्धान्त :—

1. साम से लौकिक गान उद्भूत हुआ जिसे नारदीय शिक्षा में 'गान्धर्व' कहा है। हम जानते हैं कि परवर्त्ती ग्रन्थकार भरत ने, जिनका आधार ग्रन्थ नाट्यशास्त्र रहा है, गान्धर्व शब्द का ही प्रयोग किया, किन्तु उसके साथ-साथ 'गान' का भी प्रयोग रहा। अभिनवगुप्त ने इस पर विस्तृत विवेचन किया है।

गान्धर्व की गान शैली गीतक थी, जिसका प्रयोग देव-परितोष के लिए किया जाता था। केवल जनमन रंजन करना उसका उद्देश्य न था। इसके विपरीत विशेष छन्दःबद्ध गान-वादन शैली को ध्रुवा व गान कहा गया है।

इन शैलियों को गाने का आधार जातियाँ तथा उससे उत्पन्न 7 ग्राम राग थे। उदाहरणार्थ आज भी शास्त्रीय संगीत के अलावा ग़ज़ल, कव्वाली, गीत-लोकगीत व अन्य विधाओं के 'गीत', रागों पर भी आधारित होते हैं। ऐसा ही प्रयोग जाति तथा ग्राम-रागों के लिए होता था। प्राप्त प्रमाणानुसार जातियों के आधार पर गीतक व ग्राम रागों के आधार पर ध्रुवागान का प्रयोग किया जाता रहा। अर्थात् प्रयोग-विधि निश्चित रही है। कुछ हद तक इसके अन्यथा भी प्रचलन में था, पर वह नियम नहीं था।

नये प्रयोग का सिलसिला चलता रहा, और ग्राम-रागों की संख्या में वृद्धि होती रही। उनके गान-वादन की विभिन्न शैलियाँ बनीं, जिन्हें शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा और साधारणी के नाम से जाना गया। तत्पश्चात् और भी नये रूप सामने आये जिन्हें भाषा-विभाषा-अन्तरभाषा राग, उपराग आदि कहा गया।

एक समय ऐसा आया जब इन ग्राम रागों के नियमों में परिवर्त्तन कर नवीन परीक्षण करने का सिलसिला आरम्भ हुआ। फलतः राग प्रयोग की नवीन रीति सामने आयी, जो ग्राम-रागों से ही उद्‌भूत हुई किन्तु नियमों में परिवर्त्तन व परिवर्धन करके। इनमें ग्राम-मूर्च्छना के नियमों में शिथिलता रही। जन-जन ने इस नवीन प्रयोग को अपनाया। देश-देश (जन समूह या स्थान विशेष) में गाया और स्वीकारा जाने वाला यह नवीन रूप 'देशीराग' के नाम से जाना गया। यह नवीन विकास अनुमानतः पाँचवीं से सातवीं सदी में हो रहा था, जिसका विस्तृत विवरण मतंग की बृहद्‌देशी में मिलता है, जो जन-श्रुति के अनुसार किन्नर देश (आज के हिमाचल प्रदेश का किन्नौर) का रहने वाला था। किन्नर जाति प्राचीन काल से ही गान-वादन में प्रवीण रही है। किन्नरी वीणा जो सारिका युक्त तन्त्री वाद्यों की जननी रही, किन्नर देश से ही आविष्कृत हुई, ऐसी मान्यता है। संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन प्रयोग व आविष्कार 5वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य जितना अधिक हुआ है, उतना सम्भवतः किसी अन्य काल में नहीं चाहे वह नवीन रागों पर हो, चाहे गान-वादन शैली पर, और चाहे नृत्य शैली पर क्यों न हो।

2. देशी रागों के इस क्रम-विकास का कारण एक सीमा तक तार वाद्य व बाँसुरी रहा है। षड्ज का स्थान जैसे-जैसे स्थिर होता गया, ग्राम मूर्च्छना के मूलभूत सिद्धान्त में परिवर्त्तन हुआ और वे स्वर भी लगाए गए, जो ग्राम-मूर्च्छना पद्धति में अस्वीकृत और सिद्धान्ततः अनुचित थे।

3 जैसे-जैसे देशी रागों का विकास हुआ वैसे-वैसे वादन का भी आविष्कार हुआ क्योंकि जिन वाद्यों का प्रयोग मार्ग रागों के वादन के लिए होता था, उन पर देशी राग बजाने में असुविधा प्रतीत हुई। अतः संगीतज्ञ, संगीत-चिन्तक व प्रयोगकर्त्ताओं ने नवीन वाद्यों का आविष्कार किया जिन पर देशी राग ही बजते थे। फलतः मार्ग किन्नरी के स्थान पर देशी किन्नरी वीणा का प्रचलन हुआ। आलापिनी वीणा का आविष्कार हुआ तथा अनेक नवीन वाद्य सामने आये, जो देशी रागों के वादन-सौकर्य में अग्रणी रहे।

4 जब मार्ग राग का स्थान जन समुदाय में देशी रागों ने लिया, इनके वादन के उपयोगी वीणाएँ व वंश बने, तो ताल-वादन के लिए भला मार्ग ताल कैसे सम्भव हो सकता था? अतः देशी तालों का भी प्रचलन हुआ।

5 देशी पद्धति के इस युग में नृत्य ने भी 'मार्ग' विधि को छोड़कर देशी शैली को अंगीकृत किया।

प्रयोग :—

देशी राग, स्वर वाद्य, ताल व नृत्य के प्रयोग की अनेक नवीन शैलियाँ आविष्कृत हुईं। अर्थात्

इनके गान-वादन की नयी-नयी विधाएँ भी बनीं, जो इस प्रकार हैं।

1. जाति तथा ग्राम राग, और उनके नाना प्रकार जिन्हें मार्ग राग के नाम से जाना जाता था, उसकी गान-शैली गीतक व ध्रुवागान थे। बाद में प्रबन्धों का आविष्कार हुआ। देशी रागों के विकास के साथ-साथ देशी गान-शैली का भी विकास हुआ, इनमें सर्वप्रमुख सूड प्रबन्ध थे। सूड प्रबन्ध दो प्रकार के थे, शुद्ध सूड तथा सालग (छायालग) सूड। एला झोम्बड, विप्रकीर्ण आदि शुद्ध सूड तथा ध्रुव, मण्ठ आदि सप्त तालाधारित प्रबन्ध सालगसूड के नाम से प्रसिद्ध हुए। संगीतरत्नाकर तथा परवर्त्ती ग्रंथों में इसका विस्तृत विवेचन हुआ है।

3 सप्त सालगसूडों में प्रथम सूड ध्रुव प्रबन्ध है। विद्वानों के अनुसार यही क्रमशः ध्रुवपद या ध्रुपद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके नियम तथा प्रयोग में आने वाले विभिन्न तालों तथा रसों का उल्लेख शार्ङ्गदेव ने किया है। इन्हीं ध्रुव प्रबन्धों के क्रम-विकास के इतिहास में राजा मानसिंह तोमर तथा नायक बख्शू का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है जिन्होंने ध्रुपद या ध्रुवपद के सहस्रों पदों की रचना, प्रचार व संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

4, ध्रुवपद या ध्रुपद के विकास के साथ-साथ राज दरबार में संरक्षण पाने वाला संगीत, जो बाद में शास्त्रीय संगीत के नाम से प्रसिद्ध हुआ, की अन्य गान-शैली भी प्रयोग-विधि में प्रचारित हुई। ये हैं धमार, जिनमें रास का वर्णन ही मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। इसके अतिरिक्त चतुरंग, त्रिवट, तराना, चौपाई (चतुष्पदी प्रबन्ध), दोहा (द्विपदी प्रबन्ध) आदि, जो देशी प्रबन्धों का परवर्त्ती रूप-भेद है।

5. ध्रुपद-धमार के चरम विकास के साथ-साथ ऐसा लगता है, कि मनुष्य ऊब गया और पुनः नवीन प्रयोगों पर अपने को केन्द्रित किया। अतः शास्त्रीय संगीत में ख्याल विद्या सामने आई। यद्यपि घरानेदार पारम्परिक गायकों ने अपनी औलादों को ख्याल की शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया और उन्हे, 'मर्दाना गाना' के रूप में विख्यात ध्रुपद सिखाया, किन्तु अपने शिष्यों को यह नवीन प्रयोग यानि, 'जनाना गाना' अवश्य ही बड़े यत्न से सिखाया शिष्यों ने अपने गुरूओं की दी हुई इस विद्या को हृदय में धारण कर इसे उत्कर्ष की चरम अवस्था पर पहुँचाया। फलतः मर्दाना गाना को भूलकर इस नवीन जनाना गाना को ही रसिकों ने गले लगाया। ध्रुपद के काल में ही ठुमरी शैली का विकास हुआ। खानकाहो और मजारों में गाया जाने वाला कौल- कव्वाली एवं बादशाहों द्वारा पुष्ट गजल शैली का विकास भी नये-नये रूप में होने लगा। क्रमशः लोक शैली के अन्य गीत-प्रकारों को भी नया जामा पहनाकर शास्त्रीय रूप दिया गया। चैती, होरी, कजरी आदि इन्हीं का परि-णाम है।

6. स्वर वाद्य भी नवीन प्रयोगों में पीछे नहीं रहे। भरत ने धातु-करण का उल्लेख तो किया किन्तु किन्नरी वीणा ने 'वाद्य' अर्थात् विशेष बाज तथा हस्त व्यापार को भी जन्म दिया जो परवर्त्ती विकास का द्योतक है। इन्हीं हस्त व्यापारों का परिवर्तित व विकसित रूप रूद्रवीणा में दशविध गमक के नाम से जाना गया। वस्तुतः यह ध्रुपद परम्परा का आधार स्तम्भ रहा है।

7 ख्याल के विकास के साथ-साथ वाद्यों का भी नया रूप सामने आया। नये वाद्यों में सितार, रबाब, सरोद, वेला आदि प्रमुख हैं। वादन शैली में ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ, सितार के माध्यम से। संगीत-सम्राट तानसेन के वंशज उ० मसीत सेन ने सितार-वादन के लिए नया बाज अर्थात् वादन-प्रणाली दी, जिसे संगीत रसिकों के बीच स्वीकृति मिली, साथ ही संगीत समाज में अन्य वाद्यों के

वादन के लिए भी मान्यता मिली। यह विलम्बित लय में बजायी जाने वाली शैली मसीतखानी बाज और वाद्य पर बजाये जाने वाली बन्दिश मसीतखानी गत कही गयी, जो तीनताल की 12वीं मात्रा से उठती है तथा नियत बोलों में बँधी हुई होती है। कुछ समय के पश्चात् मध्य या द्रुत लय की वादन शैली या बाज का भी आविष्कार किया गया जिसका लखनऊ के उस्ताद रजा खाँ ने ईजा़द किया और यह शैली रजाखानी बाज के नाम से जानी गयी। प्रारम्भ में यह त्रिताल की 9वीं मात्रा से आरम्भ होती थी। आगे चलकर प्रयोगधर्मी संगीतज्ञों द्वारा अन्य मात्राओं से भी बन्दिश या गतों की उठान का प्रचलन आरम्भ हुआ। आज अनेकानेक तालों में नयी-नयी गतों का प्रयोग किया जा रहा है जो प्रचार में है।

गान के प्रसंग में जैसे 'गीत' प्रयुक्त होता है, वैसे ही वादन के प्रसंग में 'गत' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

8. नृत्य की भी विभिन्न शैलियों का प्रयोग शास्त्रीय सङ्गीत में स्वीकारा गया है। शास्त्रीय नृत्य में सर्व प्रमुख है: कत्थक, भरतनाटचम्, कथकलि कुचीपुड़ी, मणिपुरी, ओडिसी आदि। कालान्तर में मोहिनी-अट्टम, छाउ, कृष्णाट्टम् आदि नृत्यों को भी शास्त्रीय सङ्गीत का दर्जा मिला है। इसका कारण यह नहीं कि इसमें शास्त्रीयता का पुट बाद में आया बल्कि इन्हें समाज के बुद्धिवादी पृष्ठपोषकों का सहयोग एवं मान्यता बाद में मिली है।

9. ख्याल व सितार की तरह ताल वाद्यों में भी अनेकानेक प्रयोग हुए। पखावज का स्थान क्रमशः तबला ने लिया; यद्यपि कर्णाटक पद्धति में मृदंग ही शास्त्रीय ताल-वाद्य है, किन्तु संगत की दृष्टि से दक्षिण भारत में शास्त्रीय गान के साथ अनेक ताल वाद्यों का प्रचलन, प्रयोग में आ गया है। जैसे-घटम् कंजीरा आदि। इनके वादन के लिए कार्यक्रम के बीच में अलग अवसर भी दिया जाता है और वादक विभिन्न लयकारियों द्वारा श्रोताओं को हर्षित करते हैं। वास्तव में यह प्रयोग प्राचीन रीति का ही अनुसरण करता है।

उत्तर भारत में ताल के लिए शास्त्रीय वाद्य में मुख्य रूप से तबला का प्रयोग होता है। इसकी वादन शैली में अनेक प्रयोग अब हो चुके और होते जा रहे हैं।

घराना :--

गान-वादन के इन नवीन प्रयोगों के आधार पर ही विभिन्न घरानों की कल्पना की गई है।

1. ध्रुपद को विभिन्न शैलियों में गाने की रीति 'वाणी' कही गयी। ये चार प्रकार की थी; गौड़हार या गौड़ी वाणी, खंडार वाणी, डागुर वाणी, नौहार वाणी। गान शैलियों व प्रयोग-विधि को ध्यान में रखकर इन वाणियों का वर्गीकरण किया गया। इन वाणियों का उल्लेख 16वीं शताब्दी में ही प्राप्त हुआ है। अनुसन्धान के आधार पर इनका स्रोत ग्राम राग की गीति शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा और साधारणी में खोजा गया है जो यथार्थ भी प्रतीत होती है।

2. ख्याल की परम्परा में भी भिन्न-भिन्न गान शैलियों का आविष्कार हुआ और नवीन घराने बने। इनमें से मुख्य हैं—ग्वालियर, आगरा, अतरौली जयपुर, किराना, पटियाला आदि। स्वर-लगाव, बोल-बनाव, तानकारी आदि की विशेषता को देखकर तथा विशेष स्थान के नाम से भी घरानों का नाम पड़ा।

3. ठुमरी-गान की परम्परा को भी राज्याश्रय मिला। अतः गान-शैली की विशेषता को देखते हुए मुख्यतः तीन घराने बने, इन्हें शैली या 'बाज' नाम दिया गया। ये हैं:—बनारस शैली (बाज) लखनऊ शैली (बाज) तथा पंजाब शैली (बाज)।

4. वादन शैलियों को 'बाज' कहा गया। तन्त्री-वाद्य के पूरब तथा पछुआ बाज अथवा लखनऊ तथा दिल्ली बाज या रजाखानी और मसीतखानी बाज का प्रचार सर्वाधिक हुआ। इन बाजों का विकास मूलतः सितार की वादन-विधि के आधार पर हुआ। अधिकांश वादक अपने को तानसेन परम्परा से जोड़ते हैं जिसमें मुख्यतः गायक होने के साथ-साथ वैणिक या रबाबिये होते थे। इसके अतिरिक्त बंगाल का विष्णुपुर तथा बिहार का गया का घराना प्रसिद्ध रहा है।

5. ताल वाद्यों में विशेषतः तबले के अनेक घराने बने। इनमें प्रमुख हैं—लखनऊ, बनारस, दिल्ली अजराड़ा, फर्रुखाबाद आदि।

6 नृत्य की विशेषताओं के आधार पर कत्थक के मुख्य घराने हैं लखनऊ, बनारस, जयपुर।

आधुनिक युग में दृश्य तथा श्रव्य सामग्री के बढ़ते उपयोग के परिणाम स्वरूप सङ्गीत अब किसी विशेष घर या शिष्य तक सीमित रहने को विवश नहीं रहा। प्रतिभावान् छात्र अपनी मेहनत, शिक्षा व बुद्धि के बल पर सङ्गीत जगत् में अपना स्थान बनाता है। अपने गुरु का केवल प्रतिकृति मात्र न होकर, नीर-क्षीर विवेक शक्ति से अगर सङ्गीत-साधक गुरु के सान्निध्य का लाभ उठाये तो वह सङ्गीत जगत् में अपनी अमिट छाप छोड़ने में समर्थ होता है।

नवीन प्रयोग का सिलसिला अभी समाप्त नहीं हुआ है और न तो ऐसा होना ही चाहिए। जिस दिन नवीन प्रयोग का सिलसिला समाप्त हो जायगा, हमारी शास्त्रीय सङ्गीत-सरिता सूखकर केवल दलदल बन जायेगी और धीरे धीरे मरुभूमि। चीन-जापान-फारस आदि देशों के प्राचीन सङ्गीत के साथ ऐसा ही हुआ है। नवीन प्रयोगों के फल-स्वरूप ही हमारा शास्त्रीय सङ्गीत आज दृढ़ नींव पर खड़ा है और विश्व को इसकी गहराई को समझने परखने व उसमें गोता लगाने की प्रेरणा देता है।

●

यहाँ मैं मोहम्मद शाह रंगीले का जिक्र करना चाहूँगा। इनके दरबार में एक गायक थे जो 'सदा-रङ्ग' जी के नाम से प्रसिद्ध हुए इनका असली नाम नियामत अली खाँ था। इनके भतीजे 'अदारङ्ग' जी (फीरोज खां) के नाम से प्रसिद्ध हुए जिनकी राग शंकरा की दो बंदिशें 'आदि महादेव बीन बजाई, पायी नियामत खां पिया, सदारंग करम दिखाई, तथा 'देवन देव महादेव' को मैंने जब भोपाल में आयोजित 'शास्त्रीय संगीत कौमी एकता सम्मेलन' में गाया तो मैं अन्दर से फूला नहीं समा रहा था, और ऐसा लग रहा था मेरा संगीत सीखना आज सार्थक हो गया तथा मन कह रहा था कि हमारे देश में इसी प्रकार के कार्यक्रम ज्यादा से ज्यादा आयोजित हों। ये मुसलमान गायक थे, परन्तु फिर भी इन लोगों ने हिन्दु आराध्यों की आराधना अपने संगीत द्वारा की।

सौजन्य—**गुलाम मुस्तफा खां**

The New Experiments in Indian Music

(Prof. Indrani Chakravorty)

Editor's Summary

On the basis of the historical evidences and analysis of the facts, Prof Indrani Chakravorty takes us to the conclusion that the Indian classical music has been able to stand deep into its foundation only due to occurrence of continuous new experiments therein. In this connection the writer also warns that the moment the process of new experiment stops, the river of our classical music shall get transfarred into the desert as happened with the music of China, Japan and Persia etc.

Prof. Chakravorty in her hypothesis has underlined that there is an intact interrelationship between the musical thought and the musical performance and they both travel simaltaneously in the race of 'continuity and change' (Satatya and Pari-vartana.)

The writer, on the basis of theoretical and practical developments of the Indian Classical music and by encompassing North and South styles therein comprising various branches of music (Vocal, Instrumental, Dance) has emphasised that this concept applies equally to one and all.

•

स्वर, साहित्य, अभिव्यक्ति, मुद्रा और 'काकु' के अद्‌भुत प्रयोगों से युक्त गुरुजी का गायन श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देता था। उनका कोमल और रसमय व्यक्तित्व, उनकी मधुर और गम्भीर वाणी के माध्यम से सम्पन्नतापूर्वक अभिव्यक्त होता था। उपर्युक्त कारण ही उनकी बढ़ी सफलता के मूल थे। उनके जीवन की सम्पूर्ण करुणा उनके गायन में 'नीलाम्बरी', 'चंपक' और 'तिलंग' आदि इसके प्रत्यक्ष उदा-हरण रहे है। आत्मानन्द की अनुभूति में इतनी करुणा का प्रवाह बहुत कम संगीतज्ञों ने प्रस्तुत किया है। मुक्तालय, संकीर्ण ठहराव और गम्भीर वाणी द्वारा गुरुजी अपने गायन में सम्मोहिनी शक्ति उत्पन्न कर देते थे। कदाचित् ही किसी दूसरे संगीतज्ञ ने अपने गायन में परम्परा और जनरुचि का गुरुजी के समान प्रदर्शन किया हो, निश्चित ही उनकी लोकप्रियता का यह एक प्रमुख आधार था।

सौजन्य—डॉ श्रीमती एन० राजम्

ताल-ध्यान और ताल-चित्र : एक प्रयोग, एक परम्परा

—डॉ० गुलशन सक्सेना

मध्य युग के समापन काल में जहाँ हम सांगीतिक विधाओं में ख्याल का बाहुल्य, परम्पराओं में घरानों का विकास तथा वाद्यों में तबले की लोक प्रियता के प्रमाण देखते हैं वहीं तत्कालीन सङ्गीत-शास्त्रों में भी एक प्रयोग देखते हैं; और वह प्रयोग है - रागों के अमूर्त स्वरूप को मूर्त करने के प्रयोजन से रागों के ध्यान, राग-चित्र व चित्राधारित राग मालाएँ तैयार करके शास्त्र ग्रन्थों में प्रतिष्ठित करना।

राग-ध्यान पर काफी काम हुआ है तथा अनेक लेख भी प्रकाश में आए हैं; परन्तु कम ही लोग जानते हैं कि रागों के ही समान ताल के भी ध्यान बने और ताल-चित्र बनाने का प्रचलन भी काफी समय तक रहा। ताल के क्षेत्र में चित्र बनाने के प्रमाण, उल्लेख व प्रयोग उत्तर व दक्षिणदोनों स्थानों पर समान रूप से मिलते हैं।

इस लेख के द्वारा ताल के क्षेत्र में हुए इसी प्रयोग और परम्परा को क्रमबद्ध रूप में सामने लाना ही मारा उद्देश्य हैं।

ताल ध्यान का मूल सर्वप्रथम 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विरचित ग्रन्थ रस-कौमुदी में दिखाई देता है। यद्यपि वहाँ 'ताल ध्यान' शब्द का प्रयोग तो नहीं हुआ है; परन्तु ताल के लक्षणों के साथ ही उनके, वर्ण आदि जिस ढंग से कहे गए हैं कालान्तर में उसी के आधार पर ध्यान और चित्र निर्मित हुए होंगे, ऐसा लगता है।

ताले चच्चत्पुटे ज्ञेयं गुरुयुग्मं लघुः प्लुतः।
सद्योजातोद्भवः शुद्धवर्णस्ततोऽष्ट मात्रिकः[1] ॥

अब तक मार्ग देशी ताल के सिर्फ लक्षण ही भाषा तथा इकाइयों में दिए जाते थे लेकिन रस-कौ० में उक्त प्रकार से ही पाँचों मार्ग तालों को उद्भूत करने वाले देवता, उनके वर्ण और मात्राओं को भी ताल लक्षण के साथ ही में दिया गया है।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दक्षिण भारतीय भाषाओं में लिखित सङ्गीत विषयक पाण्डुलिपियों में दक्षिण भारतीय सङ्गीत में मुख्य रूप से प्रचलित सप्त सूक्तादि तालों के ध्यान मिलते हैं तथा लगभग इसी काल में ताल चित्र Tala Painting) नामक पाण्डुलिपि में उत्तर भारतीय अनेक तालों के चित्र तथा उनके पाट व त्रिवट जैसी रचनाएँ मिलती हैं।

तालाध्याय (तेलगु टीका सहित संस्कृत भाषा में रचित) नानक पाण्डुलिपि[2] में ध्यान शब्द तो नहीं है पर ध्यान जैसी ही धारणा तालों के साथ प्राप्त होती है। उदाहारणार्थ—

भानुवारे पुष्यऋक्षे ध्रुवतालस्समुद्भवेत्।
पीतवर्णो विशालाक्षो हरभाल विशोभितः॥
शुभ्रवस्त्रो द्रु तञ्चैवा कौंडिन्यश्चरुषिन्वयं।
शृंगार च रसोनुष्टुप छन्दोव्रहतु देवता॥
अयं जंबुद्वीप वासे लघुरेखो गुरुस्तथा।
इदं लोक हितार्थाय भरता छः प्रयुच्यते[3] ॥

यानी विशेष दिन में विभिन्न घटकों के माध्यम से ध्रुव ताल की उत्पत्ति बताकर क्रमशः ताल के ऋषि, वर्ण, देवता, उत्पत्ति स्थान, रस, छन्द व उसका इकाई आधारित स्वरूप तो बताया ही है साथ में उसके निवास का द्वीप तथा उसके वस्त्रों तक की कल्पना की गई है।

संस्कृत भाषा में लिखित (ताल विषय नामक) ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से ताल-ध्यान शब्द का प्रयोग करके आदि, मण्ठ, रूपक इत्यादि सप्तताल तथा ध्रुव-ताल इस प्रकार आठ तालों के ध्यान निरूपित किये गए हैं। यथा—

'ध्रुवताल ध्यानम्'[3]

हंसारूढे परोश्चाग्रे त्रयोदश सतीयुतम।
एकस्त्री युक्त, वामाङ्क रत्नकेयूर हारिणाम्॥
श्वेतवस्त्रधरं शान्तं मुक्ताहारविभूषितम्।
ध्रुवताल सदा ध्यायंच्छङ्खचक्रगदा (प) धम् द)

यानी हंस पर सवार जो आगे और पीछे तेरह सतियों से युक्त है। जिसके बाएँ अंग में एक स्त्री है जो रत्नकेयूर को धारण किये हैं, श्वेत वस्त्र धारी हैं, शान्त है और मुक्ताहार से सुशोभित है। जो (स्वयं) शंख चक्र-गदा-पद्म लिये है। ध्रुव ताल का ध्यान सदा इस रूप में करना चाहिए।

इस तरह हम देखते हैं कि ध्यान के माध्यम से ताल के स्वरूप को मूर्त्त करते हुए उनका सगुण रूप, वाहन, देवता व वर्णादि को भी शब्दों के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयोजन रहा है।

वस्तुतः निराकार को साकार बनाना ही 'ध्यान' है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि आकार रहित वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति या शक्ति की साधना हेतु मानव द्वारा किसी न किसी आधार या माध्यम को अपनाया ही जाता है, फलतः वह निराकार या निर्गुण का क्रमशः साकार या सगुण रूप पाता है जिस पर वह अपना ध्यान केन्द्रित करता है। आध्यात्म व साहित्य के क्षेत्र में तथा आम जीवन में इसी एकाग्रता या केन्द्रीकरण की प्रक्रिया को 'ध्यान' कहा जाता है। इस क्रम में एक अन्य बात का उल्लेख क्रमप्राप्त होगा - यूँ तो भावनाओं को अभिव्यक्त करने हेतु शब्द और अर्थ निर्मित होने से ही आपसी व्यवहार और परस्पर आदान-प्रदान सम्भव था; लेकिन शब्द और अर्थों को भी आकार प्रदान करने की आवश्यकता हुई और परिणामतः प्रतीकाक्षर निर्मित हुए।

उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में अपने भावों को प्रस्तुत करने तथा दूरस्थित व्यक्ति तक अपना सन्देश पहुँचाने के लिए चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया जाता था। इसी चित्रात्मक शैली से परिवर्तित होते-होते कालान्तर में सभी भाषाओं की लिपियों का विकास हुआ। सम्भवतः इसी चित्रांकन तथा लिप्यांकन से प्रभावित होकर सङ्गीत जैसी अमूर्त और सूक्ष्म ललित कला में भी राग और ताल के मूर्त्त तथा स्थूल रूप प्रस्तुत करने के लिए राग तथा ताल-चित्रों का प्रचलन चला हो।

मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में राग-रागिनी वर्गीकरण के लिए पुरुष तथा प्रकृति को मुख्य रूप से आधार बनाया गया। ताल के क्षेत्र में वैसे इस तरह के वर्गीकरण की कोई सुनिश्चित परम्परा तो नहीं मिलती किन्तु ताल को भी पुरुष और प्रकृति के भेद के अनुसार शिव व पार्वती से सम्बद्ध अवश्य किया जाता रहा है।

तकारे शंकरः प्रोक्तः लकारे पार्वती स्मृतः।
शिवशक्तिसमायोगान्ताल इत्यभिधीयते॥

अथवा

तकारात्ताण्डवं प्रोक्तं लकाराल्लास्यमुच्यते।

उक्त उद्धरणों में 'ता' और 'ल' को क्रमशः ताण्डव और लास्य के द्वारा कहने में तथा शिव और शक्ति के संयोग से ताल शब्द की व्युत्पत्ति बताने में; पुरुष और प्रकृति से जोड़ने का ही भाव दृष्टिगत होता है।

ताल-ध्यान के साथ ही, ताल के शब्द-रूप के आधार पर ताल के चित्र बनाने का क्रम भी चला। सन् 1976 में ताल-चित्र नामक पाण्डुलिपि (Tala paintings) का प्रकाशन भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना द्वारा किया गया। अन्तवस्तु और लेखन-पद्धति के आधार पर यह ग्रन्थ 18वीं शताब्दी के आस-पास का प्रतीत होता है। ग्रन्थ में कुल 12 ताल, उनके लक्षण, त्रिवट नामक पारिभाषिक शब्द के अन्तर्गत कुछ पाठ-रचनाएँ व प्रत्येक ताल के चित्र दिये हैं।

चन्द्र ताल के ही समान अश्वरुद्ध, गजदन्त, गोविन्द, जय, कश्यप, कौतुकपुंज, मनोजवा, पद्म-मासिका, शेष, श्रीनिवास और बाल्मीकि इत्यादि 12 तालों में चित्र दिए हैं। अधिकांश चित्रों का ताल के नाम से पूर्ण साम्य दिखाई देता है। जैसे शेषताल में शेष नाग तथा उसकी उपासना करते हुए ब्रह्मा के चार पुत्रों का चित्रण है; चित्र पौरा-णिक कथा से सम्बद्ध है।[5] इसी प्रकार बाल्मीकि ताल में बाल्मीकि ऋषि का चित्र,[6] गोविन्द ताल में श्रीकृष्ण का चित्र[7], अश्वरुद्ध ताल में अश्व पर सवारी किये हुए महाराजा शिवाजी का चित्र है।[8] इन चित्रों के माध्यम से जहाँ एक ओर चित्रकार ने ताल के नाम के साथ उसके रूप का सम्बन्ध स्थापित किया है वहीं दूसरी ओर मनोजवा ताल में वसन्त ऋतु का चित्रण कर कामदेव का नृत्य की मुद्रा में अंकन[9], जय ताल में युद्ध से विजय प्राप्त कर लौटे हुए राजा का चित्र[10] तथा पद्ममालिका ताल में विवाह के चित्र को अंकित करके[11] वातावरण तथा परिस्थिति के साथ भी ताल-नाम और उसके रूप साम्य को प्रस्तुत किया है।

ऐसा प्रतीतहोता है कि 18 वीं शताब्दी के उत्त-रार्द्ध में जब राग-ध्यान तथा राग.चित्रों की परम्परा प्रायः समाप्त होने लगी थी तो उसी समय इन्हीं के आधार पर ताल-ध्यान तथा ताल-चित्र बनाने की प्रवृत्ति भी काफी समय तक रही। रस-कौमुदी में उल्लिखित ताल के शब्द-रूप का विकास ही हम 17-18वीं शताब्दी के ताल ध्यान और ताल चित्रों में देखते हैं।

अन्ततः—देश-काल के अनुसार व्यक्ति की रुचि और क्षमताएँ सदैव प्रभावित और परिवर्तित होती रहती हैं। मानव-मन अपनी अनुभूतियों के सम्प्रेषण हेतु कोई न कोई माध्यम ढूँढता और अपनाता रहता कभी चित्र द्वारा, कभी शब्द द्वारा, कभी शिल्प द्वारा, कभी सङ्गीत या नृत्य द्वारा; यानी कभी सूक्ष्म तो कभी स्थूल माध्यमों से वह स्वयं को अभिव्यक्त करता रहता है। इसी क्रम में प्रकृति या शक्ति के निराकार-बोध को ईश्वर और देवी-देवताओं के रूप में साकार किया गया। तब सङ्गीत कला के राग और ताल जैसे अमूर्त्त धटकों को भी उनके उसी अदृश्य रूप में कैसे स्वीकार किया जाता। आवश्यकता हुई उनके आकार बनाने की, उन्हें मूर्त्त करने की। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी हुआ करती है, फलस्वरूप राग के शब्द-रूप के आधार पर राग-ध्यान व राग-चित्र बने और ताल के शब्द-रूप के आधार पर ताल-ध्यान व ताल-चित्र निर्मित हुए। जो मूलतः 14वीं 'शताब्दी में निरूपित ताल के शब्द रूप से जिन्मत तथा ताल-नाम मुख्यतः उससे उत्पन्न होने वाली परि-स्थिति, वातावरण, एवं चित्रकार की रुचि और शैली से प्रभावित थे।

उदाहरणार्थ ताल पद्ममालिका का चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है'[2]—

टिप्पणियाँ

1. रस कौमुदी/प्र० 74/श्लोक 144.
*2. तालाध्याय, पाण्डुलिपि-204/f 2-4.
*3. ताल विषय/पाण्डुलिपि 359/f N. 1B.
4. ताल पेंटिंग्स/भारत इतिहास संशोधक मण्डल पूना/
5. — वही —/पृ० 35
6. — वही —/पृ० 21
7. — वही —/पृ० 31
8. — वही —/पृ० 25
9. — वही —/पृ० 33
10. — वही —/पृ० 27
11. — वही —/पृ० 29
12. — उपरिवत्

* उद्धरण 2 और 3 वाले श्लोक पाण्डुलिपियों में कुछ मुक्त पाठ के साथ उपलब्ध हैं यहाँ। यद्यपि उनके मूल पाठ को ही लिया है तथापि तीसरे वाले (हंसारुढे परोश्चाग्रे...) में कुछ संशोधन कर दिया गया है।

Taal-dhyana And Taal-chitra : Eka Prayoga, Eka Parampara

(Dr. Gulshan Saxena)

Editor's Summary

We are all conversant with the Raaga-dhyana and Raaga-chitra tradition of Indian music but very few of us know that there has been a very rich tradition of Taal-dhyana and Taal-chitra too in our music system. Dr. Gulshan Saxena through going deep into her critical enquiry has empharized that this is all the resultant of giving 'form to the formless' Or 'Nirakar' to 'Sakar'. Dr. Saxena has thrown light on the historical back ground of the subject and listed out the primary sources of her survey e.g. Rasa-Kaumudi, Taladhyaya Manuscripts, Taal-Paintings (Bharat Itihas Sanshodhak Mandal, Poona) etc. These sources have been dated from the 14th Century onwards, and centralized mostly to the South Indian and the Sanskrit Languages according to Dr. Saxena.

The Writer has gone through and collected a number of Raaga-dhyana & Raaga-chitra of the various Talas but here due to some limitation it was not feasible to include them all but taking only 2-3 Taal-dhyana and one taal-chitra as for illustration.

□

संगीत को सुनने के विभिन्न तरीके है। एक यांत्रिक स्थिति हैं। जब कोई व्यक्ति तकनीकि रूप से विकसित है और बेहतर संगीत की सराहना करना सीख गया है, वह निम्न स्तर के संगीत से परेशानी महसूस करता है। एक आध्यात्मिक तरीका भी है जिसका तकनीकि से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह केवल स्वयं को संगीत के साथ सुरबद्ध करता है। इसलिए आध्यात्मिक व्यक्ति संगीत के स्तर की चिन्ता नहीं करता। निःसन्देह जितना बेहतर संगीत होगा उतना आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए अधिक सहायक होगा।

—सौजन्य, सूफ़ी इनायत खां (संगीत)

ब्राह्मी संगीत

—प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा

The Poety of Earth in never dead,
The Music of Nature is ceasing never.
—Keats

धरती का काव्य कभी मरता नहीं,
प्रकृति का संगीत कभी रुकता नहीं।

कभी-कभी धरती पर स्वर्ग उतर आता है, धरती स्वर्ग हो जाती है। धरती पर स्वर्गिक अनुभूति होने लगती है। जब हम प्रकृति के बीच होते हैं, सरिता-सागर, वन-पर्वत के बीच-जब हम महत्-बृहत्, व्यापक-विराट की अनुभूति करते हैं—जब हम भावविभोर हो भावसमाधि प्राप्त कर लेते हैं, तो ऐसे दिव्य क्षणों में हमारे अन्तर में स्वर्ग की अनुभूति होने लगती है, हमारे भीतर स्वर्ग उतर आता है, बस जाता है, कुछ क्षणों के लिए, चन्द पलों के लिए ही सही।

वसन्त ऋतु बड़ी आनन्द दायिनी होती है। फागुन-चैत अथवा मार्च-अप्रैल के महीने बड़े आनन्ददायी होते हैं—न ज्यादा शीत, न ज्यादा घाम—'पावनकाल लोक विश्रामा'। अप्रैल की रातें बड़ी सुहावनी होती हैं खासकर चाँदनी रातें—अनिन्द्य अलौकिक स्वर्ग—सुन्दरी की तरह रसयय-रमणीय, सुहावन-मनभावन।

चाँदनी रातें यदि ठीक से देखी जायँ तो मधुर्वर्षिणी होती हैं, सुधावर्षिणी। वास्तव में ऐसी ही रातों में सुधा-वर्षण का आनन्द मानव को प्राप्त होता है। सुधा या अमृत क्या चीज है, क्या वस्तु है, उसकी प्रकृति, उसका स्वाद, उसका रस, उसका आनन्द क्या होता है, कैसा होता है, इसका अनुभव होता है। चाँद का सुधाकर नाम सार्थक हो उठता है। लगता है सचमुच चाँद सुधा-वर्षण कर रहा है और धरती को, आकाश को अपने स्वच्छ अमृतधार से नहला रहा है।

चैत-पूर्णिमा के आसपास मध्य रात्रि के बाद वातावरण कुछ ऐसा शान्त शीतल, आनन्दप्रद, स्फूर्तिप्रद, गीतमय, संगीतमय हो उठता है कि उस आनन्द-संगीत के चतुर्दिक परिप्लावन में शय्या-ग्रस्त, मायालिप्त बनकर पड़े रहना असम्भव हो जाता है। दो बजे के लगभग चांदनी, सुनहली परी सी चाँदनी, स्वर्णिम अप्सरा सी चाँदनी, मन प्राणों पर जादू डालने लगती है, मोहक आमन्त्रण का जाल बुनने लगती है, और फिर बयार अपना मधुरतम रूप दिखाने लगती है। चाँदनी यदि एक सुनहली परी है, एक चमकदार परी है, भावना कल्पना को 'जाग्रत-उत्तिष्ठत प्राप्य वरान्निबोधत' कहने वाली है, एक मोहक सम्मोहक दृश्य प्रस्तुत करने वाली है तो उस वक्त की बयार भी कम लुभावनी, सुहावनी, मनभावनी नहीं। इस बयार के थपेड़े, इसकी पुचकार-हुलकार इसका चुम्बन-आलिंगन, स्वरूप-आच्छादन कुछ कम मोहक-उत्तेजक नहीं, कुछ कम स्फूर्तिप्रद-आनन्दप्रद नहीं। गजब की गुदगुदी पैदा होती है इस बयार की फुहार में, गजब का उत्तेजन, गजब का विद्युत्प्रवाह पैदा होता है इस वायु के प्रवाह में। वायु भी एक अदृश्य अगोचर, पर स्पर्श-अनुभवगम्य परी जैसी ही हमारे मनप्राणों से खिलवाड़ करती है, हमारी भावना-कल्पना को

सहलाती है, हमारे दिलदिमाग को उत्तेजित करती है, हमारे साथ शोखी और शरारत की रासलीला रचती है।

इस दोतरफे आलिंगन-आनन्दन के आक्रमण-आप्लावन से हम विह्वल-विभोर हो उठते हैं—जगती का, जीवन का सारा ताप-शाप भूल जाता है—शरीर के, मन के सारे कष्ट-क्लेश मिट जाते हैं, हम एक अजीब स्वर्गिक आनन्द के आप्लावन में ऊम-चूम होने लगते हैं अजीब भावों के प्रभाव में, उनके चकोह में आ जाते हैं। जीवन में कहाँ मिलता है यह सौभाग्य, यह सौन्दर्य, यह माधुर्य, यह आनन्द, यह अनुभूति। जीवन धन्य हो उठता है। मैं सोचता हूँ हम आनन्द के शिखर पर पहुँच गये - यह आनन्द का चरम विन्दु है, पराकाष्ठा है इससे आगे या इससे ज्यादा अब आनन्द कैसा होगा ? क्या होगा ?

पर देखता हूँ अभी तो यह कम ही है - अभी आनन्द का ज्वार उठता ही जा रहा है। लगता है चाँदनी और बयार में दर्शन-स्पर्शन का आनन्द भले ही प्राप्त हो जाय, पर अमृत-श्रवण का, दिव्य संगीत का आनन्द कहाँ मिलता है और बिना अमृत गान के स्वर्ग का सुख, स्वर्ग की अनुभूति पूर्ण कैसे होगी। चाँदनी और बयार सब कुछ देती है पर अमृत-गीत नहीं, अमर संगीत नहीं।

पर यह कमी भी तुरन्त ही पूरी हो जाती है, जहाँ चाँदनी और बयार दो दो परियाँ एक साथ सक्रिय हो जायँ, एक साथ अमृत-सृजन, अमृत-वर्षण करने लगें, जग-जीवन को आप्लावित-अभिषिक्त करने लगें तो फिर वहाँ इस स्थिति में संगीत तो फूट ही पड़ेगा, गीत तो बह ही निकलेगा। स्वर्गिक आनन्द की कुक्षि से हो दिव्य संगीत का जन्म होता है, अमर गायन का उद्भव।

दो बजे रात्रि के बाद से ही पक्षियों का कलगायन प्रारम्भ हो जाता है—संगीत की धारासम्पात-वृष्टि, गीत का अजस्र स्रोत फूट पड़ता है। संगीत की दुर्दान्त सरिता उद्यम वेग से प्रवाहित होने लगती है। संगीत के सुवास से, माधुर्य के उच्छ्वास से सारा वातावरण गहगह-महमह होने लगता है।

ये पक्षी कौक-कौन से हैं, मैं जानता नहीं, पहचानता नहीं। पर खगों की दुनियाँ मुझे ठगों की दुनिया से अच्छी लगती है – खगों की दुनिया में मैं रमता भी हूँ, रसता भी हूँ पर सब खगों के नाम से परिचित नहीं। पर नाम या आकार-आकृति में क्या धरा है, क्या रखा है – वह तो बिलकुल ऊपरी चीज है, आवरण है, ढक्कन है। असल देखना चाहिए सारतत्व, उसका कृत्य, उसका फल। 'फलेन हि परिचीयते' 'A man is known by his deeds'.

तो ये पक्षी न जाने कौन सा सुधा-पान कर रहे हैं !

न जाने सौन्दर्य का कौन सा स्वर उन्हें छू गया है !

न जाने माधुर्य का कौन सा रस उन्हें विभोर कर रहा है !

छवि का कौन सा रूप उन्हें उद्विग्न कर रहा है !

रस का कौन सा सागर उनके हृदय में लहरायित हो रहा है !

अनुभूति की कौन सी लहर उन्हें हिल्लोलित कर रही हैं !

आनन्द का कौन सा अन्दाज उन्हें मथित कर रहा है !

दिव्यता की कौन सी किरण उन्हें वेध गयी है !

ज्योति का कौन सा कलश उन्हें प्राप्त हो गया है !

अमृत का कौन सा भण्डार उनके हाथ लग गया है !

ऊर्जा की कौन सी विद्युतकणिका उन्हें स्पर्शित कर गयी है !

अलौकिकता के कौन से स्वरूप से उन्हें भेंट हो गयी है !

या यह चाँदनी और यह बयार ही उन्हें इतना चैतन्य और ऊर्जस्वी बना रही है ?

बात क्या है ? समझ में नहीं आती ।

असलियत जो हो, पर मैं तो उनके कण्ठ संगीत को पी रहा हूँ—मस्त हो रहा हूँ—अघा रहा हूँ । ऐसे संगीत से मुझे पहले भेंट नहीं हुई थी । मानव-कण्ठ से क्या ऐसा संगीत निकल सकता है ? शायद नहीं क्यों कि मानव ब्राह्मी भाव से इतना ओत-प्रोत इतना सराबोर हो ही नहीं सकता, आनन्दोद्वेग से इतना लहरायित हो ही नहीं सकता । ऐसे दिव्य निर्मल संगीत-प्रस्तवण के लिए तो ऐसी दिव्य चाँदनी और ऐसी दिव्य बयार भी चाहिए - ब्राह्मी में ही वेला मधु ऋतु में ही, मधुमास की चाँदनी रात में ही ऐसा संगीत-पुष्प खिल सकता है, ऐसा पारिजात प्रकाशित हो सकता है ।

एक खास तरह के पक्षियों का संगीत जो ब्राह्मी-बेला में शुरू हुआ वह रुकता नहीं—निरन्तर अजस्र प्रवाहित होता जा रहा है – लगता है ये पक्षी हर पेड़ पर हैं, हर वृक्ष पर है क्योंकि हर ओर से इनका गीत फूट रहा है, इनका संगीत प्रवाहित हो रहा है । हर ओर से इनके गीत निकल रहे हैं, इनका गीत व्यापक है, इनका संगीत सर्वव्याप्त । इनका गीत-वर्षण इस कदर गतिमान है, इस कदर प्रवाहमान कि मेरे मन-प्राण-अहंकार को, मेरे 'मैंपन' को छेद-वेध रहा है, सबको पराभूत-परास्त कर रहा है सबको चूर्ण-विचूर्ण कर रहा है। आज लगता है सारा व्यक्तित्व टूट-टूट कर, चूर-चूर होकर, गीत में, संगीत में, ध्वनि में, रस में, लहर में, भाव में बदल जायेगा –हाड़, मांस, रुधिर, मज्जा नहीं रह जायेंगे - सारे के सारे स्थूल ठोस तत्व तरल में, रस में, बदल जायेगे ।

इस स्थूल शरीर का तरलीकरण, इस ठोस व्यक्तित्व का रसीकरण या भावीकरण एक अलौकिक आनन्दात्मक अनुभूति है—एक सरस सुमधुर सुधामयी प्रक्रिया । इन खगों का यह संगीत-प्रहार, दिगन्त-व्यापी अनवरत प्रहार मेरे सारे सुदीर्घकालीन वर्धिति-पुष्ट ठोसत्व को रसीकृत कर देता है-वैसे ही जैसे पाषाण पुंज पर्वतराज से सुरसरिता निकल-पड़ती है, देव-नदी गंगा फूट पड़ती है या गाय से दूध निकलता है या फिर ऊख से रस । पर हिमालय और सरिता में, गाय और दूध में, ऊख और रस में पृथकत्व रह जाता है, दोनों अपनी अलग-अलग सत्ताएँ बनाए रखते हैं पर मेरे साथ तो कुछ अन-होनी, कुछ अभूतपूर्व, कुछ अद्यावधि अनुभूत ही घटित हो रहा है—सारा व्यक्तित्व ही रस हो जाता है, हाड़ मांस रहा कहाँ ? मैं केवल भाव रह जाता हूँ, केवल रसानुभूति, केवल दिव्यानुभूति ।

इन पक्षियों के साथ शितिकण्ठी कोकिला का भी सहयोग हो जाता है और कुछ अन्य पक्षियों का भी । कोकिला भी अपने पूरे वेग से, पूरे उद्वेग में, पूरे आवेग में, प्राणों के समस्त साज-संभार के साथ, हृदय के समस्त रस से समृद्ध कदाचित जोर-जोर से कुहू-कुहू करने लगती है । कोकिला रात्रि के प्राकृतिक संगीत-मंच पर कुछ विलम्ब से आती है पर इसका वेग और प्रवाह निर्झर की तरह दुरन्त दुरत्यय होता है । पहले के पक्षियों का गायन एक रफ्तार से एक लय से चल रहा है जिसमें शीतकालीन समतल-भूमि की सरिता का मन्द-मन्द प्रवाह रहता है पर कोकिला का गायन तो बरसाती नदी या पहाड़ी नदी का प्रवाह हो जाता है । जैसे पहाड़ी नदी अपने समस्त वेग से कुछ देर बहे और फिर शान्त हो जाय । कोकिला का गायन सारे वातावरण को छेद देता है, वेध देता है, झकझोर देता है । कोकिला लगातार एक स्वर से नहीं गा सकती है । कोकिलाओं का स्वर इन पूर्वगायन-प्रारम्भ पक्षियों के स्वर से मेल नहीं खाता । ये पक्षी तो गजब हैं – गजब की धीरता और ऊर्जा है इनमें इन लोगों ने तो जो २ बजे रात से गाना शुरू किया तो वे गाते ही जा रहे

हैं, बिना रुके, बिना किसी विराम के। सारा बाग-बगीचा, बन-उपवन, कण-कण, क्षण-क्षण उनके गानों से गूँजित है, अनुगूंजित है, हर ओर उन्हीं का स्वर, उन्हीं का गीत संगीत। अन्य पक्षियों का स्वर तो बीच-बीच में शायद उनके स्वरों की एकरसता तोड़ने के लिए आता है—अन्य पक्षी संगीत की इस प्रतियोगिता में टिक नहीं पाते। पता नहीं इन पक्षियों ने कौन सा अमृत, कितना अमृत पान कर लिया है कि ये थकते ही नहीं, ऊबते ही नहीं, गाते चले जा रहे हैं, गाते चले जा रहे हैं, उसी रफ्तार से, उसी 'मूड', उसी भाव से।

और विराट के इस वृहत संगीत सम्मेलन का समापन काक देव के काँव-काँव के तूर्य-नाद या दुन्दुभी-वादन से होता है।

अरुणोदय होते-होते ब्राह्मी बेला का खगीय सांगीतिक समारोह समाप्त हो जाता है—सारी महफिल उड़स जाती है—सारा बाजार उड़स जाता है, सारा खेल खत्म।

अब मैं फिर धरा पर, धरती पर धडाम से आ गिरता हूँ-सर्वपरित्यक्त अनाथ अकेला सा, त्रिशंकु की तरह संगीत-स्वर्ग-साम्राज्य से ठेला सा, ढकेला सा। पर उस गीत की डोर को, उस संगीत की लहर को, उस स्वर-ध्वनि को, उस सुरधुन को, उस नादलय को धरे रहता हूँ, पकड़े रहता हूँ, ताकि आगामी ब्राह्मी बेला में पुनः उस अनुभूति को जी सकूँ, पी सकूँ।

वास्तव में ब्राह्मी बेला के इस गीत-रस की, ब्राह्मी संगीत के इस रसानन्द की कोई उपमा नहीं है, कोई समता नहीं है। यह अनुभूति अपने में ही अनुपम है, अद्वितीय है, अनुपमेय है। 'उपमा नहीं सचमुच कहीं है, दिव्य संगीत समारोह की'।

•

गीत-रचना में तीव्रतम अनुभूति के कुछ क्षणों की सृष्टि होती है, जिसके अन्तर्गत, दर्शन, भावना, सौन्दर्य, कल्पना आदि कुछ गिने-चुने शब्द शिल्प में एकत्र हो सकते हैं। हमारी समस्त मध्युगीन साधना ही गीतमय है। वैदिक युग के छन्द, गीत ही हैं। मानव की चेतना गेय शब्दों में जो तन्मयता पाती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

—महादेवी वर्मा

Brahmi Sangeet

(Prof. Ravindra Nath Ojha)

Editor's Summary

Generally we understand and appreciate the 'music' in a very limited and conventional perspective. From 'music' we mean Vocal or Instrumental form of music produced by in shastraic term, the Shariri Veena and the Daravi Veena. It is also a well known fact that the creation of these music forms is all owing to human effort, the effort which has got its own limit. But here, Prof. Ojha takes' us to some unique and universal form music 'The Divya Sangeet', 'The Brahmi Sangeet', a music which is never ceasing and that is none but 'Music of Nature'.

Infact the whole universe is the manifestation of Nada Brahma hence the 'nature' which is also a manifestation of Nada brahma, obviously full of spontaneous flow of music and the same has been experienced, obsered, relished and narrated by the writer. The central point of his observation is the melodious song of the birds started in the third quater of the night who are motivated with the pleasant murmering wind and the beautiful moon-light of the Chaitra (April)-Purnima while the Spring season is at its full youth, and this is the same Spring for which H.W. Longfellow describes in his Hiawatha—''Came the Spring with all its splendour, all its birds and all its blossoms, all its flowers, and leaves, and grasses."

Prof. Ojha has gone deep into a blissful observation of the whole scene and situation of his heavenly experience. Here I feel appropriate to quote a few of the original lines of the writer in this context where he is addressing various kinds of singing birds and questioning within himself—

"I don't know which type of nectar they (The birds) are inhaling/relishing !
I don't know which type of tone has caressed them !
I don't know which type of sweetness's flavour is thrilling them !
I don't know to which form of divinity, they have come into contact with !..
I don't know what the reality is, But. ..
I am inhaling and enjoying their vocal music, being delighted and surfeitted with it and that's all. In fact there is no simile to this music of Brahmi bela, 'Brahmi Sangeet' becauss it is a Divine music-splendour, "a Divya Sangeet Samaroh."

Ideal Audience And Critic

—Dr. Ritwik Sanyal

Scholars and Musicologists have profusely written on music and musicians, but very few have explored the qualities of an audience and that of a critic or a judge. The audience (in broader term) consists of listeners of music and spectators of Drama and other performing Arts.

Good and Bad Listeners

An audience is always mixed, with listeners of different degrees of sensibility, of different tastes, of varying ethnomusical values. An ideal listener or connoisseur is one who has an imitable and unblemished taste and an undersstanding and appreciation of the finest values in music.

A defective listener or andience can be one who has not been exposed to good music that has attained a certain height of perfection or degres of elegance. Music of the mediocre virtuosity becomes the standard for them and they promptly react to it. Here the desire to cultivate ones appreciation for the ever-rising higher genres is missing. Such a group of andience can be said to be defective.

Listeners who identify the popular classical form as standard music are also defective : they lack the sense of values to appreciate good and serious musical art. The Sanskrit term 'gramya' (ग्राम्य) is the right word for describing them.

Oursastras have very aptly described the qualities of the aud:ence. Natyashashtra of Bharata describes an ideal andience or spectator (प्रेक्षक); and Sangita Ratnakara of Sharngadeva describes members of a congregation (सभा) for performing arts. We reproduce both as under.

The Natyashastra-Set 27. 51-60)—

1. pure, with unruffled senses (अव्यागैरिन्द्रियैः शुद्धः)
2. expert in the discussion of pros and cons (ऊहापोह विशारद्)
3. faultless (त्यक्तदोष)
4. lover of performing arts (अनुरागी)
5. capable of aesthetic experience (भावनुकरणे अलंकृत)

The Sangita Ratnakara-Set (7. 1331-1333)–

1. Impartial (तटस्थ)
2. Attentive (सावधान)
3. Good speaker (वाग्मी)
4. Logical (न्यायवादी)
5. Aware of wrong and right (त्रुटितात्रुटिताभिज्ञा)
6. Humble (विनयानम्रकधर)

7. Prideless (अगर्व)
8 Aesthetically sensible (रसभावज्ञ)
9. Proficient in music and dance (तौर्यत्रितयकोविद)
10. One who refutes a false stand (असद्वादनिषेद्ध)
11. Clever (चतुर)
12 Unenvious (मत्सरच्छित्)
13. With an intensive sensitive heart (अमन्दरसनिष्यन्दिहृदय)

Good Critics and Judges

An ideal critic or theoretician is one who is proficient in both definitions (लक्षण) and oriteria (लक्ष्य) and who has been exposed to good music of various schools and styles. He should have the ability to criticise and reason and evaluate the music with an open mind. A defective theoretician lacks these qualities and has a fixation of feeling for a partial view, attitude or perspective; this may lead him to pass his view of the musical reality as the whole, total or best view, to pass off an inessential characteristic as the essence of music.

Let me quote the scriptures again. Natya Shastra describes the ideal judge or umpire (प्राश्निक) and Sangita Ratnakara the ideal patron (सभापति)

The Natya-Shastra Set (27. 50-53) --

1. Of noble character (चरित्राभिजनोपेत)
2. Of quiet disposition (शान्तवृत्त)
3. Of learning (कृतशम)
4. Of middle age (मध्यस्थवयसान्वित)
5 Of proficiency in drama in all six limbs (षडङ्गनाटचकुशल)
6. Knowledgeable (प्रबुद्ध)
7. Pure (शुचि)
8. Dispassionate (सम)
9. Of expertise in four kinds of instruments (चतुरातोद्यकुशल)
10. Knowing the standards of conduct (वृत्तज्ञ)
11. Philosopher (तत्वदर्शी)
12. Knowing the rules of dialects (देशभाषाविधानज्ञ)
13. Produces of arts and crafts (कलाशिल्प प्रयोजक)
14. Versed in four kinds of histrionics (चतुर्धाभिनयोपेत)
15. With aesthetic sensibility (रस भावविकल्पक)
16. Versed in the rules of grammar and prosody (शब्दछन्दो विधानज्ञ)
17. Versed in various theoretical disciplines (नानाशास्त्रविचक्षण)

Sangita Ratnakara-Set (7. 334-1339)—

1. Personable (शृङ्गारी)
2. Generous donor (भूरिद)
3. Respectable (मान्य)
4 Jndge of persons and performers (गात्रपात्र-विवेचक)
5. Prosperous (श्रीमान)
6. Accepting even the least qualified (गुणलेशस्यापि ग्राहक)
7. Disposed to witticism (कौतुकेरत)
8. Good speaker, orator (वाग्मी)
9. Unenvions (निर्मत्सर)
10. Skilled in making love (नर्मनिर्माणनिपुण)

11. Intellectual (सुधी)
12. Grave (गम्भीर भाव)
13. Skilled in all arts (सकलकलासुकुशल)
14. Well versed in all disciplines (समस्त-शास्त्रविज्ञानसम्पन्न)
15. Hankering after fame (कीर्तिलोलुप)
16. Sweet-tongued (प्रियवाक्)
17. Can read other minds (परचित्तज्ञ)
18. Intelligent (मेधावी)
19. Retentive (धारणाविन्त)
20. Specialist in music and dance (तुर्यत्रय-विशेषज्ञ)
21. Gifting prizes (पारितोषिक दानवित्)
22. Owning all materials means (सर्वोपकरणोपेत)
23. Knows the difference between Deshi and Marga (देशीमार्गविभागवित्)
24. Knowing the degree of proficiency (हीनाधिकविवेकज्ञ)
25. Learned (प्रज्ञा)
26. Steady in umpiring (मध्यस्थ धीरधी)
27 Whose entourage is in his command (स्वाधीनपरिवार)
28 Thinker (भावक)
29. Judging on the basis of Beauty (रस-निर्भर)
30. Truthful (सत्यवादी)
31. Aristrocatic, of noble birth (कुलीन)
32 Of pleasing appearance (प्रसन्नवदन)
33. Steady in love (स्थिरप्रेम)
34. Grateful (कृतज्ञ)
35. Compassionate (करूणावरूणालय)
36. Righteous (धर्मिष्ठ)
37. Shunning sinful acts (पापभीरु)
38. Patronizing the learned (विद्वद्वन्धु)

●

And in any case, as I said earlier, no one has ever tried to display and work out in proper empirical detail the psycho-physiological basis which Bhat Khande believ d was the ground for the raga-time connection. It is one thing to find common features in ragas that have been placed in a single time-bracket but quite another to show that this points at a deeper psycho-physiological basis for the occurrence. As clear from my argument, I think that the association made between a raga and its allotted time is an arbitrary one, it is not embedded in any universal human response, but is culturally conditioned as I have tried to show through the brief survey of its history. This notion remains localized in the North–and has been given up without any adverse consequences in the sister system of the South. Even a Culturally conditioned response may be valuable, but as I have pointed out earlier, a deeper musical response tends to undermine rather than support the raga-time association.

Courtsey–Dr. Mukund Lath, An Enquiry Into Raga-time Assoiciation.

आदर्श प्रेक्षक एवं समालोचक

(डॉ० ऋत्विक सान्याल)

सम्पादककृत सार-संक्षेप

हमारे प्राचीन शास्त्र ग्रन्थों में प्रेक्षक एवं समालोचक के गुण तथा दोष की चर्चा की गयी है। वस्तुतः प्रेक्षक के समानार्थी 'सामाजिक' तथा समालोचक के समानार्थी प्राश्निक, सभापति आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत लेख में डा० ऋत्विक सान्याल ने भरत के नाट्यशास्त्र तथा शार्ङ्गदेवकृत संगीत रत्नाकर इन दो ग्रन्थों के आधार पर प्रेक्षक तथा समालोचक के गुण-दोष का निरूपण किया है जो आज के सन्दर्भ में भी उतना ही उपयोगी है।

लेखक ने अंग्रेजी के साथ-साथ उसके मूल पाठ को लगभग ज्यों का त्यों कोष्ठक के भीतर दे दिया है। इसलिए पुनरावृत्ति से बचने के लिए 'सम्पादककृत सार-संक्षेप, के अन्तर्गत यहाँ उस हिस्से का ग्रहण नहीं किया गया है।

□

Bhave Bhatt is generally recognised as a writer of his three partly published books namely, Anoop Sangeet Vilas, Anoop Sangeet Ratnakar and Anoop Sangeet-ankush, but the fact is that he has written eighteen Lakshya Lakshana Moolak Vishishta Granthas (special book of music) and such a large number of books written by a single writer is a landmark in the history of music till this age. In this context the titles and adjectives which have been awarded (added with his name) to Bhava Bhatt and which are also the symbol of his genius, are worth to be noticed. For example, Vaggeyakar (Master in the Composition of Dhatu and Matu), Sangeet Rai (Specialist of all the three branches of music namely vocal, Instrumental and dance), Anushtup Chakravarti (Master in the Composition of Sanskrit Poetry), Sakal Kalavant (Representative Vocalist as well as Composer of Dhruvapad), Vartman Pravartak (Founder of the rules and regulations of his Contemporary Lakshya Sangeet), Taan Yoga Pravartak (Founder of the special function of taans in music) Brahmarshi (The worshipped person in the form of a great man). Besides this, credit also goes to Bhava Bhatt for being the founder of kathak Nritya along with the other different forms of Indian Classical dances.......His statement regarding the value of shruties (Microtones) is of greater importance. He says, 'The value of shruties is non-equal instead of being equal. He has also proved this fact by the establishment of shruties on the wires of Vina. The disclosure of this mystery by Bhava Bhatt regarding exact value of shruti has a special importancc in the field of music because the confusion which has been prevailing regarding value of shruties till this time is now removed by this fact.

—Dr. Adinath Upadhyaya

खयाल गायन के प्रमुख घरानों की प्रतिनिधि रचनाएँ

—डॉ० रामचन्द्र द्वो कविमण्डन

नादार्चन संगीत वार्षिकी के वर्ष 1992 के अंक में मैंने "खयाल गायन के प्रमुख घराने एवम् उनका तात्विक विश्लेषण" विषय पर चर्चा की थी। इसी क्रम में घरानेदार रचनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

किसी भी घराने का वैशिष्ट्य मुख्य रूप से जिन तत्वों पर निर्भर हुआ करता है, उनमें उन घरानों की परम्परा-प्राप्त विशिष्ट बंदिशों के प्रकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक घराने में उन उन घरानों की पारम्परिक रचनाओं का विशाल संग्रह है जिनमें घरानों की विशेषताओं का स्पष्ट रूप से अवलोकन किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से खयाल गायन के प्रमुख घरानों की कुछ प्रतिनिधि रचनाओं को स्वर-ताल-लिपि-बद्ध रूप में प्रस्तुत किया है। सुधी पाठक इन रचनाओं को गाकर घरानों के माधुर्य का आस्वाद ग्रहण कर आप्यायित हो सकेगें साथ ही तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी ये रचनाएँ उपयोगी सिद्ध होगी।

ग्वालियर घराना—

राग-मालगुंजी, एक ताल (विलम्बित)

स्थायी ये बन में चरावत गैया, लाल लकुट लिये देखो सर मोरज पंख धरे।

अन्तरा—मोर मुकुट सीस अ तक बिराजे संग सखा बिरछन की छैयाँ॥

स्थायी

रे रे ग - - म रे ग ग ये ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 0	ग रे म (म) ग रे सा- रे ग ऽ ऽ ब न में ऽ च रा 3	म - सा (नि)-, (ध)- सा रे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ व त 4
रे ग ग गै ऽ ×	ग रे-ग-रे ग म- म - - म ऽऽऽऽऽऽऽऽ या ऽ ऽ ऽ ०	म सा - रे ग म ला ऽ ल ल कु 2
म ध - - ध प-ध- -नि प ध ट ऽ ऽ ऽ ऽऽऽऽऽऽऽऽ 0	नि नि—मां नि ध ध प म ग ऽऽऽऽऽऽ लि ऽ ये ऽ 3	म रे-ग-ग-रे मा म—-मपमम ऽऽऽऽऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ 4

मे ग रे—ग—म ग	रे सा—सा रे	(मे)ग—सा सा रे सा नि
दे ऽ ऽऽऽऽऽऽऽऽ	खो ऽऽसर	मो ऽऽऽ र ज पं ऽ
×	०	2
(सा) नि— धसानिधपध (रे)नि	सा ग रे—ग—रे ग म (म)	ग रे सा (रे) ध नि सा रे
ऽ ख ऽ ऽ ऽऽऽऽऽऽधऽ	रे ऽ ये ऽऽऽऽऽऽऽ	ब न में च रा ऽ व त
0	3	4

अन्तरा

	—गमध	नि नि सां— (नि)सां सां
	ऽमोरमु	कु ट ऽ ऽ ऽ सी
		4
सां ------नि सां	(रें)नि नि सां—नि	नि सां रें—— सां नि (सां)-
स ऽऽ ऽऽऽऽऽ	अ त ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽऽऽऽऽ क ऽ बि ऽ
×	0	2
नि धसांनिधपध--	(प)प ध-ध नि-सां नि ध-नि ध	(म)म-ग म ग-रे ग म ग म ध
रा ऽऽऽऽऽऽऽऽ	जे ऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽऽऽऽऽ ऽ सं ग स
0	3	4
नि सां (नि)——सां	रें सां नि	र्सा नि ध - (प)प ध—ध
खा ऽ ऽऽऽऽ	बि र ऽ	छ न की ऽ छै ऽऽऽ
×	0	2

नि–सांनिध-निधप-धपम-पम	ग–मगम— रे–ग–रेगम (म)	ग रेसा (रे)	धनि सारे
ऽऽऽऽयां ऽऽऽ ऽऽऽऽऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ये ऽऽऽऽऽऽऽ	ब न में च	रा ऽ व त
0	3	4	

आगरा घराना

राग-पूरिया, त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी—मैं कर आई पिया संग रंग रलियाँ,
आली जात पनघट की बाट।
अन्तरा—एक डर है मोहे सास ननद को,
दुजे दोरनियाँ जेठनियाँ सतावे,
निसदिन 'प्रेमपिया' की बात ॥

स्थायी

	सा नि॒	सा मं ग रे॒	सा सा नि॒ ध॒
	मैं ऽ	क र आ ई	पि या सं ग
		0	3
नि॒ नि॒ सा रे॒	सा — सा नि॒	नि॒ नि॒ रे॒ ग	— ग ध नि
रं ग र लि	या ऽ ऽ ऽ	आ ऽ ली जा	ऽ त प न
×	2	0	3
मं ध ग मं	ग रे॒, सा नि॒		
घ ट की वा	ऽ ट, मैं ऽ		
×	2		

अन्तरा

मं मं ग ग	ध मं — ध ध
ए क ड र	है ऽ मो हे
0	3

सां	—	सां	सां	नि	(सि) रें	सां	—	—	नि	रें	गं	नि	रें	ध	नि
सा	ऽ	स	न	न	द	को	ऽ	ऽ	दु	जे	दो	र	नि	या	जे
+				2				0				3			
मं	ध	ग	मं	ग	रे	सा	—	नि़	नि़	नि़	रे	ग	मं	ध	नि
ठ	नि	याँ	स	ता	ऽ	वे	ऽ	नि	स	दि	न	प्रे	ऽ	म	पि
×				2				0				3			
मं	ध	ग	मं	ग	रे,	सा	नि़								
या	ऽ	की	वा	ऽ	त,	मैं	ऽ								
×				2											

जयपुर घराना—

राग—ललिता गौरी, त्रिताल (विलम्बित)

स्थायी—प्रीतम सैंया दरस दिया जा, मोरा जियरा चाहे मिलवे को।

अन्तरा—बिन कंत कछु नासुहाये रहिलो न जाये,

सदारंग डारो गर बैयाँ॥

स्थायी

रे	(रे) ग	रे	सा	सा	(सा) —नि़	धनि़	सा- सा	नि़	रे	ग	म	गमम	— ग	रे	सा
प्री	ऽ	त	म	सैं	ऽऽ	ऽऽऽऽ	या	द	र	स	दि	खाऽऽऽ	ऽ	जा	ऽ
3				×				2				0			
धनि़	रेग	—	—रे	गम	प	मग	रेग	रेग	रेगम	प —	मगरेग	रे	सा	रे	सानि़
मोरा	जिम	ऽ	ऽऽ	राऽ	ऽ	चाऽ	हेऽ	मिल	ऽऽऽऽ	ऽ	ऽऽऽऽ	वे	को	ऽ	ऽऽ
3				×				2				0			

अन्तरा

- - म॑ ध॒ (ध)	सां सां निसां निध॒	प प पप ध॒पम॑ प	- म॑ गरे॒ग -रे॒ गम॑ प-
वि न	कं त कछु नासु	हा ये रहि लोऽऽऽ	ऽ ऽऽऽऽ ऽन जाऽऽऽ
3	×	2	0
म॑ गरे॒ग - रे॒ सा	धनि॒ रे॒ग म म	म॑ म ग गरे॒ गम॑ प-	मगरे॒ग - रे॒सा रे॒सानि़-
ऽऽऽऽ ऽ ये ऽ	सदा रंग डा ऽ	ऽऽ रो गर बैऽऽऽ	याऽऽऽ ऽ ऽऽ ऽऽऽऽ
3	×	2	0

पटियाला घराना—

राग—अड़ाना, त्रिताल (द्रुत लय)
स्थायी—तान कपतान कहावे जग में फते अली खान।
अन्तरा—तान जब गावे तब गुनी रिझाने,
गुनी भये मेहेरबान, तान बलवन्त की ऐसी फिरत है,
ज्यूँ अरजुन जी के बान॥

स्थायी

		पनि	सारें सांनि॒ पम प-
		ताऽ	ऽऽ नऽ कऽ पऽ
			3
सां — — —	ध॒ — नि —	सां — सां, पनि	सारें सांनि॒ पम प-
ता ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ न, ताऽ	ऽऽ नऽ कऽ पऽ
×	2	0	3
सां — — —	ग॒ ग॒ ग॒ म	रे — सा, नि़	सा रे — (म) म
ता ऽ ऽ ऽ	न क हा ऽ	वे ऽ ऽ , ज	ग में ऽ फ
×	2	0	3
प नि॒ प नि	सां — निसां रें	सांरें सांनि सां,	
ते ऽ ऽ अ	ली ऽ खाऽ ऽ	नऽ ऽऽ ऽ	
×	2	0	

अन्तरा

			रेम रेसा नि़ सा
			ताऽ नऽ ज ब
			3
म प रे — म —	प प रे म	प नि सां —	नि प, नि़ सा
गा ऽ वे ऽ	त व गु नी	ऽ रि झा ऽ	वे ऽ, ज ब
×	2	0	3
म रे प म	प प रे म	प नि सां —	नि प, - -प
गा ऽ वे ऽ	त ब गु नी	ऽ रि झा ऽ	बे ऽ ऽ ऽगु
×	2	0	3
म प सां —	— सां सां सां	सां — सां सां	— सां सां सां
नी भ ये ऽ	ऽ मे हे र	बा ऽ न ता	ऽ न ब ल
×	2	0	3
सां -सां — सां	— सां — निसां	रें सां नि र्सा	नि प म प
ब ऽन्त ऽ की	ऽ ऐ ऽ सीऽ	ऽ फि र त	है ऽ ज्यूँ ऽ
×	2	0	3
नि सां रें मं	रें सां निसां रें	सांरें सोनि सां	
अ र जु न	जी के बाऽ ऽ	नऽ ऽऽ ऽ	
×	2	0	

दिल्ली घराना—

राग गुर्जरी तोड़ी, त्रिताल (मध्यलय)
स्थायी—अब मोरी नैया पार करो रे,
हजरत निजामुदीन औलिया।
अन्तरा—दुख दरिद्र सब दूर करो अब,
तानरस खाँ की ले हो खबरिया,
आनपरी मझधार ॥

ध़ नि़ सा रे	ग रे - सा	(ध)म॑ - ध नि	(ग)रे ग रे सां
अ ब मो री	ऽ नै ऽ या	पा ऽ र क	रो ऽ रे ऽ
0	3	×	2
म॑ म॑ (म॑)ग (म॑)ग	ग म॑ - ध	म॑ध निसां सां (ग)रे	ग रे सां -
ह ज र त	नि जा ऽ मु	दीऽ ऽऽ न औ	ऽ लि या ऽ
0	3	×	2

अन्तरा

(म॑)ग (म॑)ग (म॑)ग म॑	- म॑ ध ध	म॑ध निसां सां सां	सां रें सां सां
दु ख द रि	ऽ द्र स ब	दूऽ ऽऽ र क	रो ऽ अ ब
0	3	×	2
ध - ध ध	ध (ध)सां - सां	नि ध म॑ ग	(ग)रे ग रे सा
ता ऽ न र	स खाँ ऽ की	ले ऽ हो ख	ब रि या ऽ
0	3	×	2
नि़ रे ग म॑	ध - म॑ ध	म॑ध निसां रेंगें रेंसां	निध म॑ग रेग रेसा
आ ऽ न प	री ऽ म झ	धाऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽ रऽ
	3	×	2

किराना घराना

राग—मुलतानी, त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी—कंगन मुदरिया मोरी रे, धर हे रे मोरे मीत सुंदरवा।
अन्तरा—ऐसी धर दे पिया मन भावे, जगत छलावा मोरी,
कुंदन की कलियां, धर दे रे मोरे मीत सुंदरवा॥

स्थायी

नि़	नि़	सां	म॑	ग	रे	सा	–	(म॑)ग	–	प	–	म॑	ग	रे	सा
कं	ग	न	मु	द	रि	या	ऽ	मो	ऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ	रे	ऽ
0				3				×				2			
नि़	नि़	सा	म॑	ग	रे	सा	–	(म॑)ग	–	(ग)प	–	–	–	ग	म॑
कं	ग	न	मु	द	रि	या	ऽ	मो	ऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ	ध	र
0				3				×				2			
प	नि	सां	नि	ध	प	–	प	ग	–	ग	म॑	ग	रे	सा	–
दे	ऽ	रे	ऽ	ऽ	मो	ऽ	रे	मी	ऽ	त	सुं	द	र	वा	ऽ
0				3				×				2			

अन्तरा

–	प	–	प	पध	म॑प	ग	म॑	प	प	नि	नि	सां	–	सां	–
ऽ	ऐ	ऽ	सी	धऽ	रऽ	दे	ऽ	पि	या	म	न	भा	ऽ	ये	ऽ
0				3				×				2			
नि	नि	सां	गं	गंरें	रें	सां	सां	सां	–	नि	ध	प	–	प	–
ज	ग	त	छ	लाऽ	ऽ	वा	ऽ	मो	ऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ,	कुं	ऽ
0				3				×				2			
म॑	ग	म॑	ग	रे	सा	सा	–	नि़	सा	(म॑)ग	म॑	प	–	(म॑)ग	म॑
द	न	की	ऽ	क	लि	याँ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ध	र
×				3				×				2			

प	नि	सां	नि	ध	प	–	प	ग	–	ग	र्म	ग	रे	सा	–
दे	ऽ	रे	ऽ	ऽ	मो	ऽ	रे	मी	ऽ	त	सुं	द	र	वा	ऽ
0				3				×				2			

भिंडी-बाजार घराना

राग – हंसध्वनी-एकताल (मध्य-विलंवित)
स्थायी - जै मातु बिलंब तज दे, मागत गुन दे ।
अन्तरा – बिद्या गुन 'अमर' देहि, जननी जगत के ॥

स्थायी

ग	गप	(प) रे	सा
जै	ऽऽ	मा	तु
3		4	

(सा) प	(प) सा	सा	(ग) रे	(रे) ग	(रे) सा	(ग) रे	–	ग	प	(प) सां	सां
बि	लं	ब	त	ज	दे	ऽ	ऽ	मा	ऽ	ग	त
×		0		2		0		3		4	

(सां) प	निसां	(गं) रें	रेंनि	प	ग	(प) रे	सा
गु	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	न	ऽ	दे	ऽ
×		0		2		0	

(प) ग	प	सां	–
बि	ऽ	द्या	ऽ
3		4	

सां	सां	सां	सां	(सां) रें	सारें	सां	सां	सां	रें	नि	प
गु	न	अ	म	र	देऽ	ऽ	हि	ज	न	नी	ऽ
×		0		2		0		3		4	

प	नि	रें	नि	प	ग	पॅ रे	सा	
	ग	ऽ	ऽ	ऽ	त	के	ऽ	
×		0		2		0		

मेवाती घराना—

राग – हिजाज भैरव, झपताल

स्थायी—मारूत महान आज, सिद्ध करो काज,
जग में रहे नाम ।

अन्तरा—दीजो दान जो मांगू, शरण करो तो जानू",
इतनी बिनत मोरी, 'मोती' की राखो लाज ।।

स्थायी

सां	–	नि	ध॒	म	प	म	गरे	–	ग
मा	ऽ	रू	त	म	हा	न	आऽ	ऽ	ज
×		2			0		3		
सा	ग	म	–	प	नि ध॒	नि ध॒	प	–	प
सि	ऽ	द्ध	ऽ	ऽ	क	रो	का	ऽ	ज
×		2			0		3		
ग	म	म रे	–	ग	म	–	रे	ग	सा
ज	ग	में	ऽ	र	हे	ऽ	ना	ऽ	म
×		2			0		3		

अन्तरा

म	म	नि ध॒	–	नि ध॒	पध॒	निसां	सां	–	सां
की	जो	दा	ऽ	न	जोऽ	ऽऽ	मां	ऽ	गू
×		2			0		3		
ध॒	ध॒	निसां	रें	सां	सारें	निसां	ध॒	–	प
श	र	णऽ	ऽ	क	रोऽ	तोऽ	जा	ऽ	नू
×		2			0		3		

नि सां	ध – म	प म	ग – रे
इ त	नी ऽ वि	न त	मो ऽ री
×	2	0	3
सा सा	ग – म	ध ध	प – प
मो तों	की ऽ ऽ	रा खो	ला ऽ ज
×	2	0	3

बनारस घराना

राग बिलावल, त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी – प्रथमहिं गुरु चरनन चित धरिये,
तन मन धन सब अपरण करिये।
अन्तरा—गुरुकी महिमा हरि सों भारी,
रामदास भव-सागर तरिये ॥

स्थायी

	नि नि		
सा सा ध ध	ध ध प प	प म ध प	ग म ग –
प्र थ म हिं	गु रु च र	न न चि त	ध रि ये ऽ
0	3	×	2
	नि		
ग रे ग प	ध नि सां सां	सां रें सां नि	ध प म ग
त न म न	ध न स ब	अ र प ण	क रि ये ऽ
0	3	×	2

अन्तरा

प प प –	नि ध नि –	सां सां सां –	सां रें सां –
गु रु की ऽ	म हि मा ऽ	हृ रि सों ऽ	भा ऽ री ऽ
0	3	×	2
सां सां			
ध – ध नि	– नि सां सां	सां रें सां नि	ध प म ग
रा ऽ म दा	ऽ स भ व	सा ऽ ग र	त रि ये ऽ
0	3	×	2

The Representative Compositions Of The Main Khayal Gharanas

(Dr. Ramchandra V. Kavimandan)

Editor's Summary

'Gharanas' have been the back bone of Indian Classical music. Keeping in view this fact 'Nadarchan' has been acknowledging articles on Gharanas from the very begining of its birth. As we know that the subject is very wide, hence to encompass the pros and cons to its core it was essentially needing a careful and well-planned presentation. Under the same inspiration this is the third bloom of the series. The previous two were :—(1) 'The concept of Gharana in Indian classical music' by... Dr. Adinath Upadhyaya in 'Nadarchan -1991' and (2) 'The Main Khayal Gharanas and Their Substantial analysis' by Dr. Ramchandra V. Kavimandan in 'Nadarchan–1992.'

Under the present heading Dr, Kavimandan has produced some respresentative compositions of the main Khayal Gharanas :—Gwalior Gharana Agra Gharana, Jaipur Gharana, Patiala Gharana, Delhi Gharana, Kirana Gharana, Banaras Gharana Mewati Gharana and Bhindi Bazar Gharana. These Compositions will prove to be useful in two ways; firstly from the performance or singing point of view and secondly from the comparative study of the Gharanas, as it is a well-known fact that the composition-structure play vital role in the manifestation of the individuality of the respective Gharana.

'नादार्चन' परिवार की सानुताप श्रद्धा–स्मरणाञ्जलि

भारतीय संगीत के पुरोधा पं० सामता प्रसाद मिश्र 'गुदई महाराज' को जो अब हमारे बीच नहीं रहे।

हमारे लेखक--रचनाकार

— डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार
प्रवक्ता, संगीतशास्त्र विभाग,इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, राजनाँद गाँव, (म॰ प्र॰)–491881

— प्रो० इंद्राणी चक्रवर्ती
अधिष्ठाता मंच व दृश्य कला संकाय तथा नेशनल फेलो, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–171008

— डॉ॰ ऋत्विक सान्याल
बी 5/6, मानस मन्दिर कालोनी, वाराणसी–221005

— डॉ० गुलशन सक्सेना
प्रवक्ता, संगीत; राजकीय महिला महाविद्यालय देवरिया सदर(उ॰प्र॰)–274001

— जयप्रकाश सिंह 'सुरमणि'
184/आई, डी॰ एल॰ ड्ब्ल्यू॰
वाराणसी–221004

— प्रो॰ प्रेमलता शर्मा
'आम्नाय,' 209/1, नन्दनगर कालोनी करौंदी, वाराणसी–221005

— प्रो० रवीन्द्र नाथ ओझा
न्यू कालोनी, डाक बंगला रोड
बेतिया, प॰ चम्पारण–845438

— डॉ॰ रामचन्द्र व्ही॰ कविमण्डन
रटाटे पाटनकर निवास, B 36/44 B4
सुकुलपुरा, वाराणसी-221001

— शिवसेवक त्रिपाठी,
ग्राम–सुमेरपुर, डाक–झूँसी (छिवैया), इलाहाबाद (उ॰ प्र॰)

Our Contributors

— **Dr. Anil Bihari Beohar**
Lecturer, Department of Musicology
Indira kala Sangeet Vishwavidyalaya
Khairagarh, Rajnandgaon–491881

— **Prof. Indrani Chakravorty.**
Dean, Faculty of Proforming & Visual Arts. & National Fellow, U G C.
Simla 171008

— **Dr. Ritwik Sanyal**
B. 5/6 Manas Mandir Colony,
Varanasi

— **Dr. Gulshan Saxena**
Lecturer in Music, Govt Women's Degree College, Deoria Sadar(U P)–274001

— **Jai Prakash Singh 'Surmani'**
184/I, D. L. W.
Varanasi–221004

— **Prof Premlata Sharma**
'Amnaya,' 209/1, Nandnagar Colony, Karaundi, Varanasi–221005

— **Prof Ravindra Nath Ojha**
New Colony, Dak Bungalow Road,
Bettiah, West Champaran (Bihar)

— **Dr Ramchandra V. Kavimandan**
Ratate & Patankar Niwas,
B 36/44-B4, Sukulpura,
Varanasi —22 001

— **Shivsewak Tripathi**
Village—Sumerpur
P. O.—Jhusi (Chhivaiy a)
Allahabad (U. P.)

'नादार्चन-संगीत वार्षिकी'–1991 प्रवेशाङ्क की विषयवस्तु

1. आशीर्वाद एवं प्रेरणाएँ
2. प्राक्कथन
3. मौन साधना का एक मुखर स्वर : डीरेका के बंगाली बाबा — श्री आलोक प्रियदर्शी
4. मानव-जीवन का परम इष्ट : नाद-साधना — श्री विजय कृष्ण जोशी
5. हमें देखना है कि............ — डॉ॰ प्रदीप कुमार दीक्षित 'नेहरंग'
6. संगीत से आनन्द की अभिवृद्धि — श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
7. सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का प्रतीक–हमारा शास्त्रीय संगीत — डॉ॰ ऋत्विक सान्याल
8. भारतीय संगीत कला से पुरुषार्थों की प्राप्ति- — डॉ॰ विमला मुसलगाँवकर
9 संगीत के क्षेत्र में व्यक्तिवादी वर्चस्व की प्रवृत्ति : एक घातक विडम्बना — स्व॰ जयन्त कृष्णमूर्ति
10. संगीत में शब्द और स्वर का समन्वय — श्रीमती गिरिजा देवी
11. भारतीय संगीत में 'घराना' की अवधारणा — डॉ॰ आदिनाथ उपाध्याय
12. भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल का महत्व तथा उसका गणितीय विश्लेषण — डॉ॰ केदारनाथ भौमिक
13. भारतीय संगीत में स्वर-प्रतिपादन : एक विहंगम दृष्टि — डॉ॰ कृष्णनाथ ओझा
14. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ
15. हमारे सांस्कृतिक क्रिया-कलाप
16. एक सुमन-शुभाशीष की याचना में — श्री शिव सेवक त्रिपाठी
17. हमारे लेखक-रचनाकार

नादार्चन-संगीत वार्षिकी– 1992 की विषयवस्तु

1. शुभकामनाएँ
2. सम्पादकीय
3 नादार्चन-प्रवेशांक-प्राक्कथन (1991)
4. प्रयोगात्मक कलाएँ : प्रयोक्ता और प्रेक्षक का अन्तः सम्बन्ध — डॉ॰ अनिल बिहारी ब्योहार

5. खयाल-गायन के प्रमुख घराने एवं उनका तात्विक विश्लेषण — डॉ० आर० व्ही० कविमण्डन

6. 'धातु' संगीत में 'इण्टरडिसिप्लिनरी अध्ययन का उदाहरण — डॉ० सुभद्रा चौधरी

7. कलाकार का स्वरूप : संगीत के परिप्रेक्ष्य में — स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति

8. अकबर-जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख — डॉ० राय आनन्द कृष्ण

9. जैन परिप्रेक्ष्य में संगीत — डॉ० श्रीमती कमल जैन

10. ध्रुपद पर प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव — डॉ० जयचन्द्र शर्मा

11. संगीत : मेरी दृष्टि में — प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा

12. दास्ताने तवायफ़ : ठुमरी और दादरा की पर्याय ये संगीत-साधिकाएँ — श्री गजेन्द्र नारायण सिंह

13. संगीतशास्त्र में विज्ञान — डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा

14. रंगों की पृष्ठभूमि : सांगीतिक सात स्वरों के रंग — डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

15. सांगीतिक समस्याएँ — डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित

16. कला के क्षेत्र में रसानुभूति — डॉ० विमला मुसलगाँवकर

17. काव्यांजलि — श्री शिवसेवक त्रिपाठी

18. हमारे लेखक-रचनाकार

19. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ

नादार्चन-संगीत वार्षिकी—1993 की विषयवस्तु

1. देवी-स्तुति — पं० बलवन्त राय भट्ट 'भावरंग'

2. शिव-शक्ति विमर्श — विजय कृष्ण जोशी

3. अकबर-जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख — डॉ० राय आनन्द कृष्ण

4. जैन-वाङ्मय का संगीत-पक्ष — डॉ० कमल जैन

5. सांगीतिक स्वरों की जन्मतिथि, नक्षत्र आदि — डॉ० जयचन्द्र शर्मा

6. विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत-शिक्षा का मूल्यांकन — डॉ० अर्चना दीक्षित

7. भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की भूमिका एवं सम्बद्ध उल्लेखनीय परिदृश्य — जय प्रकाश सिंह 'सुरमणि'

8. संगीत और योग — आशीष चटर्जी

9. स्वर-साधना — डॉ० भुवनेश्वर तिवारी
10. The Tone Poet — Dr. Subhadra Choudhary
11. Sangeet Rai Anushtup Chakravarti Bhava Bhatt : An Extraordinary Personality in the Field of Music — Dr. Adi Nath Upadhyaya (Translation–J. P. Singh)
12. गीताञ्जलि — शेषमणि निगम
13. हमारे लेखक-रचनाकार
14. 'नादार्चन' के पिछले अंकों की विषयवस्तु
15. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ
16. 'नादार्चन' के सम्बन्ध में कुछ भावाभिव्यक्तियाँ

वीणा के तार पर श्रुति एवं स्वर की एकीकृत स्थापना के अवलोकन से पता चलता है कि भावभट्ट की श्रुतियों तथा स्वरों के गुणोत्तर प्रमाण पं० ओंकारनाथ ठाकुर द्वारा निर्धारित षड्जग्रामिक श्रुति-स्वर व्यवस्था से पर्याप्त मेल खाते हैं। भावभट्ट की स्थापना में कुछ श्रुति-स्थान तो ऐसे हैं जो दोनों ही सूचियों में एक समान हैं। निष्कर्षतः, यह कहना तो कठिन है कि भावभट्ट की यह प्रयोग-विधि एवं उससे प्राप्त परिणाम आज के प्रसंग में कितने समीचीन होंगे, किन्तु इतना तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है, ये श्रुति स्वर विषयक विवेचन में और विशेषरूप से उनके अन्तरालजन्य सम्बन्धों को समझने में सर्वाधिक सहायक होंगे। सम्भव है ग्रन्थकार की इस महत्वपूर्ण देन के आधार पर हमारे प्राचीन संगीत की लुप्त परम्परा को समझने एवं श्रुति-स्वर-सम्बन्धों की गुत्थी सुलझाने का कोई नया मार्ग भी प्रशस्त हो सके।

—डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

हमारे सांस्कृतिक क्रियाकलाप

1988 के कार्यक्रम

गायन—श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—सुश्री दीप्ति बनर्जी
नृत्य—श्री रविशंकर मिश्र तथा श्री सामता मिश्र
स्वतन्त्र तबला वादन—श्री लक्षू महाराज

1989 के कार्यक्रम

गायन—श्री अजीत भट्टाचार्य
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—श्री बादल महाराज
वायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
गायन—श्री छन्नू लाल मिश्र
कथक नृत्य सुश्री उर्मिला शर्मा
तबला संगतकार—पं० लक्षू महाराज, श्री सत्यनारायण सिंह
हारमोनियम—श्री परशुराम पाण्डेय, श्री विनोद लेले
सारंगी—श्री गणेशजी

1990 के कार्यक्रम

शहनाई—नैयर खाँ (सुपुत्र बिस्मिल्लाह खाँ)
गायन—पं० छन्नूलाल मिश्र
वायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
कथक नृत्य—श्री रविशंकर मिश्र, श्री सामता मिश्र
गायन—श्री प्रदीप कुमार, श्री सत्यनारायण सिंह
सितार—सुश्री रक्तिमा सरकार
कथक नृत्य—सुश्री सोनाली मुखर्जी
स्वतन्त्र तबला वादन—पं० लक्षू महाराज

तबला संगतकार—पं० ईश्वरलाल मिश्र, श्री कुबेर मिश्र, श्री किशोर मिश्र

हारमोनियम—श्री ध्रुवजी

सारंगी—श्री गणेशजी, श्री सन्तोषजी

1991 के कार्यक्रम

शहनाई—श्री रमाशंकर एवं साथी
सितार—डॉ० रक्तिमा सरकार
गायन—डॉ० ऋचा जौहरी
युगलबंदी—डॉ० रामू शास्त्री (वायलिन) एवं श्री अमरनाथ मिश्र (सितार)
युगल कथन नृत्य श्री माताप्रसाद एवं श्री रविशंकर
वृन्द वादन—मैहर वाद्य वृन्द (संस्थापक-अलाउदीन खाँ)
गायन—श्रीमती मंगला तिवारी
सरोद—श्री विश्वजीत राय चौधरी
तबला संगतकार—श्री लक्षू महाराज, श्री ईश्वर लाल मिश्र, श्री कुमार लाल मिश्र, श्री रघुनाथजी, श्री किशोर लाल मिश्र, श्री विनोद लैले
हारमोनियम—श्री ध्रुवजी
सारंगी—श्री बच्चालाल मिश्र, श्री संतोष मिश्र

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का लोकार्पण—द्वारा डॉ० विद्यानिवास मिश्र

1992 के कार्यक्रम

सितार—डा० रक्तिमा सरकार
तबला वादन—श्रीधनंजय मिश्र
युगल गायन—श्री अमरनाथ मिश्र एवं श्री पशुपतिनाथ मिश्र
युगल वादन—श्री अमरनाथ मिश्र (सितार) एवं श्री रमाशंकर (शहनाई)
सितार वादन—श्री कृष्ण कुमार मुखर्जी
गायन—श्री देवाशीष डे
कथक नृत्य—श्री मधुकर आनन्द
सरोद वादन—श्री जयदीप घोष
तबला संगतकार—श्री लक्षू महाराज, श्री पुण्डरीक कृष्ण भागवत, श्री ईश्वर लालमिश्र, श्री जे० मैस्सी, श्री विनोद लैले, श्री कुमार लाल मिश्र

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का लोकार्पण—द्वारा डॉ० प्रेमलता शर्मा

1993 के कार्यक्रम

शहनाई—श्री रमाशंकर
सितार—डॉ० रक्तिमा सरकार

गायन—श्रीमती मंजू सुन्दरम्
युगल कथक नृत्य—कु० अनुपमा सेठ, कु० रत्ना गुप्ता
सितार—पं० अमरनाथ मिश्र
युगल गायन—डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित एवं डॉ० अर्चना दीक्षित
कथक नृत्य—सुश्री उर्मिला शर्मा
सितार—श्री राजेश शाह
तबला संगतकार—सर्वश्री लक्षू महाराज, छोटेलाल मिश्र, विनोद लैले, पंडरीक कृष्ण भागवत, ईश्वर लाल मिश्र, पूरन मिश्र, कैलाश निषाद, अशोक पाण्डेय
सारंगी संगतकार—पं० हनुमान प्रसाद मिश्र, पं० बच्चालाल मिश्र
पखावज—श्री रवि उपाध्याय
हारमोनियम—सर्वश्री शुकदेव भट्ट, राहुल भट्ट
'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का लोकार्पण—द्वारा पं० किशन महाराज

1994 के कार्यक्रम

डीरेका स्थित शिवकाली मन्दिर परिसर में विजय दशमी के अवसर पर आयोजित शास्त्रीय संगीत समारोह 18 अक्टूबर को सम्पन्न हुआ। बंगाली बाबा की पुण्य स्मृति में आयोजित इस सांगीतिक समारोह ने श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन किया।

समारोह का उद्घाटन डीरेका के महाप्रबन्धक श्री आर० के० जैन की पत्नी श्रीमती कमल जैन ने दीप प्रज्ज्वलित कर के किया। संगीत निशा की शुरुआत डाक्टर भुवनेश्वर तिवारी द्वारा राग मालिका में निबद्ध दुर्गा स्तुति से हुई। इसके बाद श्री देवाशीष डे का गायन हुआ जो श्रोताओं की आशा पर खरा उतरा। उन्होंने सर्वप्रथम राग भीम में बड़ा एवं छोटा ख्याल तथा इसके बाद राग दुर्गा में एक निर्गुण 'आई गवनवा की बारी' प्रस्तुत किया। उनकी जानदार तानों एवं सरगम ने श्रोताओं को बांधकर रख दिया। उनके साथ तबले पर विनोद लैले और हारमोनियम पर पंडित शुकदेव भट्ट ने संगत की। पंडित ओंकारनाथ ठाकुर के सानिध्य में रह चुके पंडित भट्ट की संगत का कोई जवाब नहीं था।

कार्यक्रम की अगली प्रस्तुति के रूप में देश-विदेश में अपने नृत्य की छटा बिखेरनेवाले श्री माता प्रसाद मिश्र एवं श्री रविशंकर मिश्र का युगल नृत्य प्रस्तुत हुआ। मिश्र बन्धु के नृत्य में तैयारी तो काफी दिखायी दी किन्तु कल्पनाशीलता का अभाव खटकता रहा। आपके साथ गायन में श्री प्रेमकिशोर मिश्र, पखावज पर श्री चन्द्रशेखर जी एवं तबले पर पंडित लक्षू महराज ने उत्कृष्ट संगत की। लगातार खराब होते स्वास्थ्य के बावजूद लक्षू महाराज जी की फड़कती ऊंगलियाँ के जादू ने जनसमूह को स्तब्ध कर दिया।

कार्यकम की अन्तिम प्रस्तुति के रूप में सरोद, सैक्सोफोन एवं गिटार की संगत वास्तव में अनूठी थी। सैक्सोफोन पर फ्रांस से पधारे कलाकार श्री सैण्ड्रो मैरिओट्टी, गिटार पर पंडित शिवनाथ भट्टाचार्य एवं सरोद पर पंडित विकास महाराज की त्रिवेणी में श्रोता ऐसा बह गये कि ब्रह्म-बेला कब हुई, पता ही नहीं चला। कुछ-एक जगह सरोद अवश्य बेसुरा हुआ परन्तु कुल मिलाकर प्रस्तुति सराहनीय रही।

कार्यक्रम का संचालन डॉक्टर आदिनाथ उपाध्याय ने किया। श्री कमला सिंह ने धन्यवाद ज्ञापित किया। ●

'नादार्चन' के सम्बन्ध में कुछ भावाभिव्यक्तियां

(सम्पादक को सम्बोधित)

यह बड़े हर्ष का विषय है कि शारदीय नवरात्र के पवित्र पावन पर्व पर आपने संगीत की भव्य पत्रिका 'नादार्चन' के प्रकाशन का संकल्प लिया है। मुझे विश्वास है कि जिस उद्देश्य एवं आदर्श को ध्यान में रखकर इस संगीत-पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है, वह सार्थक होगा।

—**डा० विद्या निवास मिश्र**, वाराणसी

इस पत्रिका में क्या नहीं है, यह तो गागर में सागर है।......इस पत्रिका की जितनी भी तारीफ की जाए, कम है।

—**स्व० पं० सामता प्रसाद मिश्र**
'गुदई महाराज', वाराणसी

जो पत्रिका इतने बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा लिखी गई हो, उसके बारे में मैं तो इतना ही दुआ कर सकता हूँ कि यह सदैव चलती रहे।

—**उस्ताद अल्ला रक्खा**, बम्बई

इस पत्रिका में जितने भी लेख हैं, वे सभी मौलिक व शोधपूर्ण हैं। यह संगीत-पत्रिका संगीत के विद्यार्थियों व विविध कोटि के जिज्ञासुओं, सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी है।...... संगीतकारों की आने वाली पीढ़ी 'नादार्चन' के प्रति उपकृत रहेगी।

—**पं० जसराज**, बम्बई

काशी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण संगीत-जगत् को ऐसी पत्रिका की सख्त आवश्यकता थी। इस पुनीत कार्य के लिए सम्पादक डॉ० आदिनाथ उपाध्याय साधुवाद के पात्र हैं।... ...

—**श्रीमती गिरिजा देवी**, वाराणसी

'नादार्चन' का प्रकाशन संगीत-जगत् के लिए एक उदात्त व अनुकरणीय उपलब्धि है। ऐसी पत्रिकाएँ ही संगीत-जगत् के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती हैं।

— **पं० किशन महाराज**, वाराणसी

यह पत्रिका बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। संगीत जगत् को आज ऐसे ही प्रकाशन की आवश्यकता है, जिससे लोगों को तात्विक ज्ञान मिले। गायन-वादन-नृत्य तो हर जगह सुलभ हो जाते हैं, परन्तु संगीत के शास्त्र पक्ष की संगीत प्रेमियों की जानकारी नहीं मिल पाती है और यह पत्रिका इस कमी को पूर्ण करने में अत्यन्त सक्षम प्रतीत हुई।

—**पं० हरि प्रसाद चौरसिया**, बम्बई

पत्रिका आकर्षक लगी। कुछ ऐसे लेख हैं जो बिलकुल नयी और रोचक बात कह रहे हैं। आशा है 'नादार्चन' के माध्यम से संगीत के ऐसे और भी नवोन्मेष आप प्रकाशित करते रहेंगे।

—डा० मुकुन्द लाठ, जयपुर

पत्रिका के सभी लेख विद्वत्तापूर्ण तथा संगीत-जगत् के लिए उपयोगी हैं। वर्तमान युग में ऐसी पत्रिका की नितान्त आवश्यकता थी।

—डा० जयचन्द्र शर्मा, बीकानेर।

यह वार्षिक पत्रिका अपने में बड़ी कीमती है, मालुमात का खजाना है। ......मैं अल्लाह से दुआ करता हूँ कि वह आपकी इस खिदमत को कबूल करें।

—उस्ताद गुलाम मुस्तफा खाँ, बम्बई

'नादार्चन' बढ़िया ही नहीं, अपितु बहुत ही बढ़िया पत्रिका है। पारम्परिक संगीत के सम्बन्ध में जो जानकारी इस पत्रिका में है, वह सबसे अलग व रोचक है। आशा है कि भविष्य में भी यह पत्रिका नए-नए तथ्यों को प्रकाश में लाकर नई व पुरानी-दोनों ही पीढ़ियों को लाभान्वित करती रहेगी। ......

—श्रीमती किशोरी अमोनकर, बम्बई

'नादार्चन' अपने किस्म की बिलकुल अनूठी पत्रिका है। इसमें अधिकांश लेख ऐसे हैं, जो बिल्कुल ही नई बातें कह रहे हैं। मेरा विश्वास है कि इतनी ईमानदारी से जो कार्य हो रहा है, वह सदैव चलता रहेगा।

—पं० शिवकुमार शर्मा, बम्बई

पत्रिका सांगोपाङ्ग देखी, सम्पादकीय सहित सभी लेख। सात्विकता की सुगन्ध, आध्यात्मिकता का आनन्द-आलोक। 'नादार्चन' संगीत वार्षिकी के माध्यम से संगीत-सेवा का आपका यह प्रयास सफल रहे, यही कामना है।

—प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा, बेतिया

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का प्रवेशाङ्क प्राप्त हुआ। पत्रिका का गेट-अप, छपाई आदि सभी उत्कृष्ट एवं नयनाभिराम है। सामग्री भी उपयोगी है।......आशा है, संगीत जगत के लिए यह पत्रिका काफी लाभदायक सिद्ध होगी।

—संपादक संगीत' मासिक, हाथरस

'नादार्चन' का प्रवेशांक अतीव आकर्षक लगा। पत्रिका का गेट-अप सुरुचिपूर्ण है। निबन्धों का चयन आदि भी सन्तोषजनक है।......पत्रिका के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की कामना करती हूँ।

—श्रीमती उषा के० त्रिवेदी, अहमदाबाद

पत्रिका बहुत सुन्दर है, लेखों का चयन भी बहुत सूझ-बूझ के साथ किया है। आपका सम्पादन दायित्व निर्वाह अनुकरणीय है।

—**श्री ओमप्रकाश चौरसिया,** भोपाल

नादार्चन के प्रथम अङ्क की प्रस्तुति एक सफल-सात्विक-सांगीतिक प्रयास रहा, स्तरीय और श्लाघनीय भी। उसके भावी अङ्क भी उदात्त-उन्नत होंगे, ऐसी आशा है।

—**श्री शिवसेवक त्रिपाठी,** इलाहाबाद

The 'Nadarchan' magazine has opened my eyes to the rich and great world of classical music....

—**John Simon,** Kenya

This magazine proves that India is still at the top in the field of classical music and musical manifestation.

—**Rosalinda N.,** Austria

I had never expected a magazine of 'Nadarchan' standard both in quality and quantity, at such a low price...

—**Noni' O Brien,** Ireland

'नादार्चन' के अन्तर्गत विविध कोटि के निबन्धों को पढ़कर ऐसा अनुभव हुआ कि संगीत, संस्कृत एवं दर्शन के क्षेत्र में काशी नगरी आज भी अग्रणी है।

—**डा० ए० बी० बोषी,**, राजकोट

□

'नादार्चन' के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ:

सविता सुर–भारती

[संस्कृत, संगीत व साहित्य के प्रति समर्पित एक संस्था]

●

संस्थापक : ना० गो० किंजवडेकर

D 53/89, कमला कटरा
गुरुबाग, लक्सा रोड, वाराणसी
दूरभाष : 56882

विशेषताएँ :—

उपज खाद अपनायें खेतों को कमजोर होने से बचाएँ। उपज खाद से भरपूर उपज का विश्वास !! उपज खाद कीमत में कम व गुणवत्ता में ज्यादा है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटास के साथ जिंक, कापर, मैगनीज आयरन, पोटैसियम, आक्साइड, सूक्ष्म तत्व हैं। उपज खाद जमीन में नमी बनाये रखता हैं। जिसमें नाइट्रोजन तत्व तुरन्त अलग हो जाता है और नमी से सन्तुलित तौर पर लम्बे समय तक पोषक तत्व प्रदान करता है।

उपज खाद उपयोग करने के फायदे :—

- खेतों को उपजाऊ बनाता है।
- खेतों को नमीयुक्त बनाए रखता है।
- खेतों की मिट्टी को भुरभुरा बनाता है।
- पानी के खर्च में एक तिहाई बचत करता है।
- खेत को उसर होने से बचाता है।
- फसलों में भोजन तत्व की आपूर्ति करता है।
- इसके उपयोग से पौधे मजबूत होते हैं। रोग कम होता है। पैदावार की मात्रा ज्यादा होती है।
- उपज खाद का उपयोग सभी फसलों में किया जा सकता है। इसमें पैदावार के सभी तत्व होते हैं यह सन्तुलित खाद है। व फसलों के विकास में सन्तुलन बनाये रखती है।

पैदावार हेतु मात्रा :—

एक बिस्सा 12.5 किलो ग्राम
एक बिगहा 250 किलोग्राम
एक एकड़ 375 किलोग्राम

मात्रा :—

- लान हेतु २ किलो ग्राम प्रतिवर्ग मीटर।
- गमलों को पूरा इससे भर देवें।
- पुराने गमलों में आधी मिट्टी निकाल कर इसे मिलाकर भर देवें।

नोट :—इसका उपयोग हर समय हर फसलों में किया जा सकता है।

उत्तम काम कम दाम

"उपज" की सम्वृद्धि है ! पैदावार में वृद्धि है !!

उपज

कार्बनिक
खाद
से
भरपूर
उपज
का
विश्वास

हर फसलों में ज्यादा पैदावार हेतु अति उपयोगी
"उपज" कार्बनिक खाद का प्रयोग करें ।

SHIVA SYNDICATE

निर्माता :---शिवा सिंडिकेट

शिव विहार मार्केट, विरदोपुर, महमूरगंज
(विरला बगीचा के सामने) वाराणसी-221010-भारत
फोन :—360033, 362704, 362790

कुछ अपेक्षाएँ—कुछ समाधान

Some Expectations-Some Propitiations

'नादार्चन संगीत वार्षिकी—1995' पाँच वर्ष पूर्ण करने के उपलक्ष्य में विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित होगा।

The Nadarchan Music Annual - 1995 on the completion of its 5 years will be published as SPECIAL ISSUE.

लेखकों से :

—रचना 31 जुलाई, 1995 तक अवश्य पहुँच जानी चाहिए।

—पत्रिका के लिए संगीत के साथ-साथ ललित कला तथा दार्शनिक विषय भी स्वीकृत किये जाते हैं।

—प्रकाशन के एक माह के भीतर रचनाकारों को पत्रिका की एक प्रति तथा पारिश्रमिक अवश्य भेज दिया जायेगा।

पाठकों से :

—पत्रिका की कीमत कृपया धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा अथवा नगद रूप में प्रेषित करें जो व्यवस्थापक, नादार्चन संगीत वार्षिकी, 374/ए, डी॰ एल॰ डब्ल्यू॰, वाराणसी (उ॰ प्र॰)-221004 के पक्ष में देय होगा।

—आदेश देने के एक माह के भीतर यदि पत्रिका न पहुँचे, तो व्यवस्थापक के नाम स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विज्ञापन दाताओं से :

—नादार्चन का आगामी अंक विशेषाङ्क होने के कारण अपनी विज्ञापन-सामग्री 31 अगस्त, 1995 तक अवश्य भेज दें।

—विज्ञापन दर आदि के सम्बन्ध में समस्त प्रकार का पत्र-व्यवहार सीधे व्यवस्थापक से करें।

विशेष :

पत्रिका के व्यापक प्रचार-प्रसार में सहभागिता के लिए वितरक/पुस्तक विक्रेता सम्पर्क हेतु आमंत्रित हैं।

हमारा पता :

'नादार्चन संगीत-वार्षिकी,' 374/ए,
डी॰ एल॰ डब्ल्यू॰, वाराणसी (उ॰ प्र॰)-221004

From the Contributors :

—Article should reach summarily latest by 31st July, 1995.

—In addition to Music, the articles on Fine Arts & philosophical subjects are also accepted for this magazine.

—A Copy of the magazine and remuneration shall be sent to the contributors within one month of the publication of the magazine.

From the Readers :

—Please pay the cost of the magazine, either in cash or by money-order, which should be payable to the Manager, Nadarchan Music Annual, 374/A, D. L. W. Varanasi (U. P.)-221004.

—If the magazine does not reach to you within one month of the submission of your order, please send a reminder in the name of the Manager.

From the Advertisement-Contributors :

—As the coming issue of Nadarchan is a SPECIAL ISSUE, Please send your advertising text etc. latest by 31st August, 1995.

—All the correspondence regarding the advertisement rates, etc. should be directly addressed to the Manager.

N. B. :

All the Distributors Book Agents interested in becoming a part of our Sales-network are most welcome.

Our Address :

Nadarchan Music Annual 374/A,
D. L. W. Varanasi (U P)-221004

With Best Compliments of

KAIMUR STONES PVT. LTD

Sinduriya, Road,
Chopan, Sonebhadra

KAILASH CONSTRUCTION COMPANY

Sinduriya, Road
Chopan, Sonebhadra

H.O : SINGH AUTOMOBILES

Lucknow Road,
Ballia (U. P.)
Ph. No. 05492-800465

With Best Compliments From :—

LATE SHRI VIJAY DEO MISHRA

Founder of Kusum Palace (Cinema Hall)

Khonjwa, Varanasi.

Phone : 310168

Shri INDRA DEO MISHRA
Shri ANANT DEO MISHRA
Shri ARUN KUMAR MISHRA
Shri SUSHIL KUMAR MISHRA
Shri BIPIN KUMAR MISHRA

With Best Compliments From :—

SHILPI BEADS [P] LTD.

Factory : Village-Ghamhapur, P.O. Gangapur,
VARANASI

Registered office : B 22/ 05, Khonjwa Bazar, Varanasi
TEL. No. 311623

BOARD OF DIRECTORS —

MANISH UPADHYAYA
PRATYUSH UPADHYAYA
SHANTANU UPADHYAYA

With Best Compliments From

IDEAL CARPETS LIMITED

RAJ NAGAR, G. T. ROAD, GOPIGANJ—221303

DISTT. BHADOHI (U. P.) INDIA

PHONES : (054 18) 30444, 30450, 30275

CABLE : 'IDEAL' GOPIGANJ, BHADOHI

REGD. OFFICE :

B 1/69, ASHOK VIHAR, PHASE-II, DELHI-110052

PHONE : 7133738

HOTEL IDEAL BEST WESTERN

CANTT., VARANASI (U.P.)–221002

PHONE : (0542) 348091, 348092

FAX : (0542) 348685

IDEAL CARPET INDUSTRIES

RAJ NAGAR, G. T. ROAD, GOPIGANJ—221303

DISTT. BHADOHI (U.P.) INDIA

PHONE : (05418) 30444, 30450, 30275

CABLE : 'IDEAL' GOPIGANJ, BHADOHI

FAX : (05418) 30473

IDEAL PRAKASHAN PVT. LTD.

F–2 (6) IMLAK DEVELOPMENTS,

NADESAR, VARANASI.

PHONE : (0542) 45191, 45192

EXPORT ★ DYEING ★ SPINNING ★ HOTEL ★ PRESS

शुभ कामनाओं सहित :

राधेश्याम पेपर स्टोर्स

कर्णघंटा, वाराणसी

कागज के विक्रेता

फोन : 353952, 353546

ह र बा त बे ह त र

HERO HONDA Splendor

85 KMS/ LITRE

- संपूर्णतः नवीन मोटरसाईकल निर्विवाद सर्वोत्तम
- शक्तिमान 7.5 बी० एच० पी० इंजन-जबरदस्त पॉवर व पिकअप
- अधिक अॅव्हरेज, 85 कि०मी० प्रति लीटर
- 11 लीटर व नवीन पद्धति की पेट्रोल टैंकी
- अधिक पॉवरफुल हेडलाईटस् 35/35 वॉट, पोजीशन लाईट सहित
- तत्काल ब्रेक के लिये बड़ा ब्रेक ड्रम
- मजबूत, टिकाऊ, उच्चदर्जे की डबल क्रेडल चेसिज़ फ्रेम
- अगले दशक के निर्धारित प्रदूषण स्तर की सीमा में
- नवीन - फ्यूल मीटर व इंडिकेटर्स

□ एक ही इग्नीशन व हैंडल लॉक □ सायलेन्सर □ अधिक आरामदायी सीट

- 7.5 बी एच पी
- 35 वॉट हेडलाइट
- बड़े ब्रेक-ड्रम
- डबल क्रेडल ट्यूबलर फ्रेम
- आरामदायक लो-स्लंग सीट
- फ्यूल गेज
- विशेष डिजाइन के टायर (6 प्लाई)
- तीन परतों वाला एयर-फिल्टर

सम्पर्क करें :— यू० एस० अग्रवाल एण्ड कम्पनी

डी० ६४।१३५, सिगरा, वाराणसी

फोन० ३६०८९८

With Best Compliments from :

VIRENDRA PRATAP SINGH

CIVIL CONTRACTOR

★

D. L. W. VARANASI

BETTER COMPUTER EDUCATION.
BY THE GOVERNMENT.

UPTRON
ACL

ACADEMY OF COMPUTER
LEARNING

A GOVERNMENT UNDERTAKING

VARANASI CENTRE : 5, SANT RAGHUBAR NAGAR
SIGRA-MAHMOORGANJ ROAD
PHONE-361154

मेसर्स सरजू प्रसाद मुन्नी लाल

राजादरवाजा, गोविन्दपुरा, वाराणसी-221001

(आकर्षक—मनमोहक डिज़ाइनों में हैंडीक्राफ्ट आइटम्स के निर्माता)

—माडर्न शोपीस, मूर्त्ति, मोमेंटो (स्मृति-चिह्न) आदि।

—सिंहासन, मण्डप, फौहारा, महफिल सेट, मुकुट, छाता, जयमाल कुर्सी, राजशाही कुर्सी।

—जीप सेट, हाथी का हौदा, रिक्शा सेट।

—चँवर, पंखा, आशा, झंडा निशान, सोटा, बल्लम, झूला, पालना।

—ह्वाइट मेटल के साथ-साथ एल्यूमिनियम एनोडाइज व पालिश भी होता है।

—आपके मनचाहे मेटल में माडल आदि भी बनाए जाते हैं, जैसे- लोकोमोटिव/इंजन का मॉडल आदि।

—खेल-कूद तथा सांस्कृतिक आयोजनों में पुरस्कार व उपहार के आइटम।

आप एक बार हमारे शोरूम में पधारकर हमें सेवा करने का मौका दें।

आपकी संतुष्टि ही हमारी उपलब्धि है

शोरूम का पता : स० नं० सी० के० 13/45, गोविन्दपुरा,
वाराणसी-221001 फोन नं० 351756

With Best Compliments From :

DLW Cinema Club

Members are requested to
please keep the hall and
Surrounding clean and tidy.

From

DLW Cinema Club

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि नादतनु भगवान शंकर की नगरी
काशी, जो आदि काल से ही संस्कृति व संगीत का केन्द्र
रही है, आज भी उच्चकोटि के संगीतज्ञों, विद्वानों
व कला-मर्मज्ञों से सुशोभित है। काशी की इसी
गरिमा-गह्वर से समुत्पन्न उसका एक
अप्रतिम-उदात्त नवोन्मेष है—
'नादार्चन'।

★

**It is an universally
honoured truth that Kashi,
the city of Nadtanu Lord Shankar
has been the centre of culture and music
since very ancient times, is adorned with
high ranking scholars and virtuosos, even today.
The Birth of the 'Nadarchan' is illustrious manifes-
tation to the same ratification of the dignity of Kashi.**

NADARCHAN MUSIC ANNUAL

374/A, D.L.W. VARANASI -221004 (INDIA)

Printed at : Jai Bharat Printing Press D. 51/168 C-2 Surajkund
Varanasi-221010 Phone 351416